काव्यानुवाद की समस्याएँ

काव्यानुवाद की समस्याएँ

साहित्य की सभी विधाओं—
उपन्यास, कहानी, नाटक,
कविता तथा निबंध के
अनुवाद की समस्याएँ

सम्पादक
डॉ० भोलानाथ तिवारी
महेन्द्र चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

दो शब्द

'अनुवाद' आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता है, और इसीलिए यह आवश्यक है कि उससे संबद्ध विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया जाये। हिन्दी मे इस दिशा में अभी तक विशेष कार्य नही हुआ है। इसी कमी की पूर्ति के लिए 'अनुवाद ग्रन्थमाला' का प्रारम्भ किया गया। इस ग्रन्थमाला की तीन अन्य पुस्तकें हैं: 'अनुवाद-विज्ञान', 'पारिभाषिक शब्दावली: कुछ समस्याएँ', तथा 'अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ'।

प्रस्तुत पुस्तक 'काव्यानुवाद की समस्याएँ' मे 'साहित्य' के अनुवाद की समस्याओ पर विचार किया गया है। इसके नाम में 'काव्य' शब्द का प्रयोग 'कविता' के लिए न होकर 'साहित्य' के लिए हुआ है। कहने की आवश्यकता नही कि 'काव्य' शब्द का मूल अर्थ 'साहित्य' ही है, इसीलिए 'साहित्यशास्त्र' को 'काव्यशास्त्र' कहा जाता है तथा इसीलिए प्राचीन भारतीय परम्परा मे 'साहित्य' की सारी परिभाषाएँ 'काव्य' नाम से ही दी गयी हैं। इस तरह इस पुस्तक के नाम मे 'काव्य' शब्द अपने मूल पारम्परिक और विस्तृत अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है।

'साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ' अन्य प्रकार के अनुवाद की समस्याओ से कई दृष्टियो से भिन्न होती हैं। इस संकलन मे संकलित लेखो मे मूलतः और मुख्यत. केवल उन्ही समस्याओ को लिया गया है। प्रारम्भ मे श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा डॉ० नगेन्द्र के लेख हैं, जिनमे अत्यन्त संक्षेप मे, किन्तु गहराई के साथ, साहित्यिक अनुवाद के कुछ पक्षो को लिया गया है। आगे महेन्द्र चतुर्वेदी, श्री अजित कुमार, भोलानाथ तिवारी, डॉ० नगीनचन्द सहगल, श्री सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी तथा श्री सुरेन्द्रकुमार दीक्षित के लेख हैं, जिनमे साहित्य की विधा कविता के अनुवाद से सम्बद्ध समस्याएँ ली गयी हैं। अगले लेखो मे क्रमशः महेन्द्र चतुर्वेदी ने 'उपन्यास के अनुवाद' की

समस्याओं को लिया है, तो भोलानाथ तिवारी ने 'नाटक के अनुवाद' की समस्याओं को। ललित निबन्ध या गद्य काव्य की समस्याओं को अलग से नही लिया गया है, क्योंकि कविता, कथा साहित्य और नाटक के अनुवाद मे साहित्यिक अनुवाद की प्राय सभी समस्याएँ आ जाती हैं, अत शेष को अलग लेने में पिष्टपेषण मात्र होता।

तुलसी मे 'नानापुराणनिगमागम' रूप मे जो सकेत हैं, उनके आधार पर काम करने पर यह सुखद आश्चर्य हुआ कि तुलसी काव्य-अनुवादक के रूप मे भी कम नही हैं। अगले लेख मे श्री राजेन्द्रप्रसाद ने उनके अनुवादक के रूप पर विचार किया है। इस तरह इस लेख मे एक मध्यकालीन अनुवादक का मूल्यांकन है।

उमर खैयाम की रुबाइयो का अनुवाद विश्व की अनेकानेक भाषाओं मे हुआ है। हिन्दी में भी उनके कई अनुवाद हैं। अगला लेख उनके हिन्दी अनुवादो का तुलनात्मक लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है।

इसके बाद परिशिष्ट मे कुछ इस्तोनियन कविताओं के हिन्दी अनुवाद हैं, और अन्त मे डॉ० किरण बाला ने 'साहित्य के अनुवाद' की कठिनाइयो पर सक्षेप मे विचार करते हुए साहित्य के अनुवाद के विषय मे, फिट्ज़ेरल्ड, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, महादेवी वर्मा, टी० एस० इलियट, बच्चन तथा धर्मवीर भारती आदि कुछ अच्छे अनुवादको के विचार सकलित किये हैं, जिनके आधार पर पाठक यह जान सकें कि साहित्य के अनुवाद के विषय मे कृती अनुवादको के क्या विचार हैं।

और अन्त मे, इस सकलन मे जिन जिन लोगों के लेख या उद्धरण सकलित हैं, हम उनके प्रति हृदय स आभारी हैं। कुछ सामग्री 'कृति सस्कृति', 'भाषा' तथा 'अनुवाद पत्रिकाओं के अको से ली गयी है। कुछ विद्वानो के मत-अभिमत विविध स्रोतों से सग्रहीत किये गये हैं। सकलन होने के नाते इसमे विचार-भेद और पुनरावृत्ति दोनो ही सहज-स्वाभाविक है। पुनरावृत्ति को भरसक बचाने का प्रयत्न किया गया है किन्तु उदाहरणो आदि मे सर्वत्र यह सम्भव नहीं हो सका। हम सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। वस्तुत, इन सबके सहयोग के बिना यह सकलन इस रूप म नही आ पाता।

समवेतत, आशा है, यह सकलन साहित्य के अनुवादको, साहित्य का अनुवाद सीखनेवालो तथा साहित्य के अनुवाद स सम्बद्ध विविध समस्याओं म रुचि रखनेवालो के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

स० ही० वात्स्यायन

साहित्य का अनुवाद

लेखकों तथा अनुवादकों के निकट भी अब यह स्पष्ट हो गया है कि अनुवादकों के विषय मे प्रचलित कहावत कि वे अर्थ का अनर्थ कर देते हैं, नितान्त भ्रमात्मक है। वास्तविक दृष्टि स इसमे उतनी ही सचाई है जितनी इस कथन मे कि 'कवि लम्बे केश वाले व्यक्ति होते हैं, या इस प्रकटत गम्भीर उक्ति मे कि 'रुष्ट कवि ही आलोचक होता है।' भारत म विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में अनुवादो की आवश्यकता दिन पर दिन बढती जा रही है और इसके फलस्वरूप अनुवाद के क्षेत्र में मूल लेखक भी उतर रहे हैं। अत यह आवश्यक है कि अनुवादक को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है और अच्छे अनुवाद के लिए जिस विशिष्ट दक्षता की आवश्यकता होती है, उसे भली भाँति समझा जाये।

अनुवाद क्या है? शाब्दिक अर्थ तो स्पष्ट है किन्तु साहित्यिक कृतियों के अनुवाद-कार्य के प्रसग मे हम उस अर्थ की व्याख्या करने का जितना अधिक प्रयत्न करते हैं उतना ही वह जटिल होता जाता है "विचारो अथवा तात्पर्य को भिन्न भाषा मे अभिव्यक्त करना", या 'विचारो को एक भाषा से दूसरी मे रूपान्तरित करना।" प्रश्न उठता है कि क्या किन्ही दो शब्दो का पूर्णत समान अर्थ होता है? इसके अतिरिक्त भी अनेक बातें हैं। उदाहरणार्थ, कविता के प्रसग मे 'अर्थ' से क्या तात्पर्य हो सकता है? क्या कविता वही है जो कि उसकी अन्तर्वस्तु? किसी कविता मे अभिव्यक्त 'विचार को एक भाषा से दूसरी मे रूपान्तरित' कर देने मात्र से अनुवादक का कार्य पूरा हो जाता है? इसी प्रकार के अनेक अन्य प्रश्न भी पैदा होते हैं जैसे 'अभिव्यक्त करने' से क्या तात्पर्य है? स्वय विचार, उन शब्दो से जिनमे कि वे पिरोये गये हैं, कहाँ तक पृथक् किये जा सकते हैं?

जिस किसी ने भी वास्तविक अनुवाद का प्रयत्न किया हो उसे स्पष्ट होगा कि उपर्युक्त बातो का मतलब बाल की खाल निकालना अथवा बात को कोरी कल्पना के क्षेत्र म ले जाने का प्रयास करना नही है। सच तो यह है कि इन प्रश्नों का

पूर्णरूपेण सामना किये बिना कोई भी व्यक्ति कला के रूप मे अनुवाद-कार्य को समझने की ओर अग्रसर ही नहीं हो सकता। हमारा यह कहना नही है कि इन प्रश्नो के उत्तर धरे-धराये हैं। विभिन्न कलाओं की अपनी समस्याओं के समाधान पहले से ही तो नही कर दिये जाते। निरन्तर क्रिया से ही प्रत्येक कला को उसका विशिष्ट स्वरूप और सुभिन्नता, अर्थात् उसका अद्वितीय व्यक्तित्व प्राप्त होता है। कला के रूप में अनुवाद के सिद्धान्तो के समुचित अर्थात् व्यावहारिक सूत्र की खोज मे देश को जिन परिस्थितियो का सामना करना पड़ेगा उनकी रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास इस निबन्ध म किया जा रहा है।

यदि हम इस आधार से प्रारम्भ करें कि समस्त अभिव्यक्ति अनुवाद है क्योंकि यह अव्यक्त (या अदृश्य आदि) को भाषा (या रेखा, या रंग) म प्रस्तुत करती है तो यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया जा सकता है कि अन्तत मौन ही साहित्यिक कला (या शून्य ही दृश्य, या मूर्तकला) है। यह कोई अनर्गल बात नही है क्योंकि जहाँ तक रहस्यवादियो का सम्बन्ध है, उक्त कथन के अतिरिक्त कोई भी अन्य कथन उनको सन्देहास्पद प्रतीत होगा। जो लोग इस हद तक जाने के लिए तैयार नही हैं वे भी यह कह सकते हैं कि अनुवाद स्वभावत असम्भव है क्योंकि कोई भी शब्द किसी अन्य शब्द का पूर्णरूपेण स्थान नही ले सकता। फ्लौबेयर का mot juste अपने आप मे पूर्णरूपेण अनुपम शब्द है। कनफ्यूशियस का 'चिंग मिंग' शब्द ऐसा है जिसका स्थान कोई भी अन्य शब्द नही ले सकता। इसी प्रकार छायावादियो का भी यह विश्वास है कि वास्तविक कविता मे एक ही शब्द हो सकता है (जिसका अनुवाद नही किया जा सकता)।

किन्तु इतनी दूर जाने की आवश्यकता नही है। व्यावहारिक स्थिति स्वय कठिनाइयो से परिपूर्ण है।

पहले हम बाह्य समस्याओं को लेंगे। भाषा की अपनी ही कठिनाइयाँ हैं। मानवों के बीच सवादो के साधन के रूप मे भाषा, स्थान और काल, युग और उनकी परिस्थितियो से अनिवार्यत गुँथी रहती है। एक समाज स दूसरे समाज, एक युग से दूसरे युग में सक्रमण मूल लेखक और अनुवादक के बीच की समस्याओं से कहीं अधिक गहन समस्याओं को अन्तर्ग्रस्त करता है। ऐसे 'पर्याय' के प्रयोग से, जो कि मूल लेखक के युग से सगत हो, रूढ़िवाद का दोष उत्पन्न हो सकता है और यदि मूल लेखक अपने समय मे "आधुनिकवादी" रहा हो और भाषा के क्षेत्र मे नये प्रयोग करने वाला समझा जाता हो, तब तो यह उपहास-पूर्ण ही प्रतीत होगा। दूसरी ओर, मूल लेखक की भाषा का अपने युग से जैसा सम्बन्ध रहा हो, अनुवादक के युग मे वैसा ही सम्बन्ध रखने वाली भाषा के प्रयोग द्वारा मूल लेखक और उसके युग के सम्बन्ध को दर्शाने के प्रयास से दूसरे प्रकार का भयकर काल-भ्रम पैदा हो सकता है, यद्यपि सिद्धान्तत ऐसे

प्रयास को यथार्थ, सही और समुचित मानना ही पड़ेगा। इसी प्रकार सामाजिक परिस्थिति का प्रतिरूपण, या उसकी पुनरावृत्ति भी निराशापूर्ण ही होगी। इस प्रसंग में 'माया' या 'लीला', 'चौइसी' या (अस्तित्ववादी अर्थों में) 'ड्रेड' जैसे दार्शनिक शब्दों की ओर ही जाना आवश्यक नहीं है क्योंकि परम्पराजात समस्याएँ अकेले काल या स्थान में ही नहीं किन्तु स्थान-काल-नैरंतर्य में घोषित रूप में भी विचारी जा सकती हैं। किन्तु साधारण शब्द भी जटिल समस्याएँ पैदा कर सकते हैं। अंग्रेजी के 'डान्सर' शब्द के लिए हिन्दी के इन पर्यायों पर विचार कीजिए—नर्तकी, नटनी, नचनी, नाचने वाली। वैसे ये सब काफी सुन्दर पर्याय हैं किन्तु प्रत्येक में निहित भाव एक-दूसरे से कितना भिन्न है? प्रत्येक के उच्चारण मात्र से प्रकट होने वाले समाजों या वर्गों के बीच कितनी बड़ी दरार है। और भी, 'शराब', 'सुरा', 'मदिरा', 'मद्य', 'हाला', या 'खाना' और 'भोजन', ये सब शब्दकोशीय पर्याय हैं, फिर भी इनके अर्थों के अन्तर इतने व्यापक हैं कि उनको समझने के लिए कोई बड़ी बारीकी की आवश्यकता नहीं पड़ती।

'शब्द की रूढ़ि और इतिहास पर विचार करने से जटिलता और भी विस्तृत हो जाती है। जिस प्रकार कर्म के फल आत्मा से चिपके रहते हैं उसी प्रकार का कुछ अदृश्य, अर्थात् शब्द का संस्कार भी शब्द से लिपटा रहता है। यही दो शब्द 'कर्म' और 'संस्कार' हमारे अच्छे उदाहरण हैं। किसी अन्य भाषा में इन शब्दों को व्याख्या के बिना किस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है? यहाँ यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि ये अत्यधिक विशिष्ट शब्द हैं, यद्यपि हम यह प्रतिपादित कर रहे हैं कि अपनी रूढ़ि से प्रत्येक शब्द विशिष्ट बन जाता है। 'पानी' और 'जल' पर्याय हैं किन्तु इनसे दो अत्यधिक विभिन्न रूढ़ियों का आभास होता है। प्रकटतः पर्यायवाची शब्द दैनिक समागम में ही इतने विभिन्न भावार्थ रखते हैं तो जब शब्दों का साहित्यिक प्रयोग किया जाता है तब समस्या कितनी अधिक जटिल हो जाती है, यह सहज ही समझा जा सकता है। साहित्यिक प्रयोग में शब्द के रूढ़ रूप को उसके शब्दकोशीय अर्थ से अधिक व्यक्त करने के प्रयोजनार्थ प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार व्यक्त अर्थ उसका वास्तविक अर्थ हो जाता है जो कि स्वयं शब्द के परे है।

अनुवाद के एक और पक्ष पर विचार करने में दूसरे प्रकार की जटिलता हमारे सामने आती है। यह पक्ष भी अनुवादक की दृष्टि से बाह्य पक्ष ही है। यह है ध्वनियों या ध्वनि-रूपों के तात्पर्य को अन्तरित करने की समस्या। कविता के अनुवाद में इसका विशेष महत्व है। श्रवणेन्द्रिय के भी स्थान-काल से सम्बद्ध अपने विशिष्ट पहलू हैं। एक ही ध्वनि विभिन्न प्रकार से सुनी जाती है जिससे पद्य-रूपान्तर बिलकुल ही भिन्न हो जाता है। किन्तु यदि जाति-सम्बन्धी, या अन्य सूक्ष्म अन्तरों को छोड़ दिया जाये तो भी हमारे समक्ष काफी कठिनाइयाँ रह

जाती हैं। वाशो की प्रसिद्ध 'हाइकू' इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण है कि ध्वनि और भावार्थ दोनो को व्यक्त करने मे अनुवाद-कार्य कितना कठिन होता है। इस अनुपम कृति के दर्जन से अधिक अनुवाद विद्यमान हैं। ये सब-के-सब सुयोग्य और ईमानदार अनुवादको द्वारा किये गये हैं, फिर भी प्रत्येक का अलग-अलग प्रभाव होता है। पूर्णत दृश्य से पूर्णत श्रव्य तक इनका विस्तार है। एक 'श्रोल्ड पोड' को बहरे पाठक के समक्ष सजीव बना देता है तो दूसरा अन्धे पाठक के समक्ष।

जहाँ तक वर्तमान काल मे भारत में अनुवाद का सम्बन्ध है, यह उपयुक्त होगा कि भारतीय समाज की कुछ विशिष्टताओ की ओर, विशेषकर नगरों मे रहने वाले पढे-लिखे लोगो की ओर, ध्यान दिया जाये क्योंकि अनूदित साहित्य को यही वर्ग पढता है और सामयिक प्रादेशिक कथा-साहित्य के बावजूद, अधिकांश मे अब भी इसी वर्ग के बारे मे लिखा जाता है। इस वर्ग की कोई भाषा नही है। केवल मात्र माध्यम जिसे वह सरलता और थोड़ी-बहुत योग्यता के साथ प्रयुक्त करता है, अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषा का मिश्रण है, जिस बोलियो से अलकृत किया जाता है। यह वर्णसकरी बोली ही सच्चे मानों में इस वर्ग की स्वाभाविक बोली कही जा सकती है। इस तथ्य के परिणामो को समझना और उनका सामना करना आवश्यक है। स्पष्ट है कि ऐसी कोई भाषा, जिसे प्रामाणिक लिखित भाषा के रूप मे स्वीकृत किया जा सकता है, इस वर्ग का प्रतिनिधित्व नही कर सकती और यह वर्ग उसे अनुवाद की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप मे स्वीकार भी नही कर सकता। अनुवादक के भाषा सम्बन्धी पक्षपात के बावजूद, वह जो कुछ भी मान्य रूप मे लिख सकता है वह उसी मान्यता के कारण इस वर्ग को अमान्य हो जाता है जिसके स्तर का कि वह प्रतिनिधित्व करना चाहता है। इस प्रकार सारी भाषा कृत्रिम और अवास्तविक हो जाती है। वह या तो किताबी और पडिताऊ, या फिर अभद्र या अशिष्ट होती है। यदि भाषा-सम्बन्धी बारीकियो को छोड दिया जाये और पूर्ण यथार्थवाद का प्रयोग किया जाये तो वह हास्यास्पद प्रतिरूपण हो जायेगा। आल्डस हक्सले ने 'जैस्टिग पाइलैट' में भारत की एक सार्वजनिक सभा मे सुने भाषण की प्रतिक्रियाएँ दर्शायी हैं। "जेबर-जैबर जैबर डोमीनियन स्टेटस जैबर-जैबर काग्रेस, जैबर-जैबर-जैबर जैबर .. ..।" जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई तब भारतीय पाठकों को उसमे कोई व्यग न मिला और आज भी वही बात होगी जब तक कि किसी पाठक की व्यग-सम्बन्धी भावना ही विलक्षण न हो। किन्तु यह सच है कि दक्षिण भारतीय की बोली आज भी यही "जैबर-जैबर इगलिश, जैबर-जैबर-जैबर इगलिश जैबर............," है और इस बात से स्थिति मे कोई सुधार नही होता कि यह जैबर बोली उत्तर मे हिन्दी-उर्दू-पंजाबी, पूर्व में हिन्दी-बगाली, दक्षिण मे तमिल-

हिन्दुस्तानी आदि का मिश्रण है। इसके अतिरिक्त वर्ग-विभेद भी है जो "बाबा का गुसल लगा दो" और "साहब को पुडिंग दिखाओ" से लेकर "रोटी परस दो" तक के सूक्ष्म अन्तरो से प्रकट होते हैं। ऐसे वातावरण में सच्चे अर्थों में कथा-साहित्य या नाटक का अनुवाद किस प्रकार हो सकता है ?

जहाँ तक अनुवादक की आन्तरिक समस्याओं का सम्बन्ध है उनको कीट्स के शब्दो मे 'नकारात्मक योग्यता' कहा जा सकता है, फिर भी कवि के मुकाबले में अनुवादक की मुख्य कठिनाइयो के कुछ लक्षणो पर बल देना आवश्यक है। रचयिता को केवल अपनी विषयवस्तु के सम्बन्ध मे अपने व्यक्तित्व को परे रखना पडता है या निलम्बित करना पडता है किन्तु अनुवादक को तो वैसा मूल लेखक तथा लेख की विषयवस्तु के सम्बन्ध मे भी करना होता है। अनुवादक को लेखक मे ही नहीं, लेखक की विषयवस्तु में ही नही अपितु लेखक की विषयवस्तु मे लेखक की तरह अपने को आत्मसात् करना होता है। इसके लिए अनुवादक की प्रज्ञा-शक्ति का द्विमुखी विस्तार और दोहरा आत्मनिषेध या अनुशासन होना आवश्यक है। कवि के पास या तो प्रतिभा होती है, या कुछ नही होता। यदि प्रतिभा है तो कवि के लिए कोई समस्या नही रहती। किन्तु प्रतिभा के होते हुए भी अनुवादक की सारी समस्याएँ व्यापक रूप मे उसके समक्ष उपस्थित रहती हैं।

यह सच है कि अच्छे लेखक और महान् कवि दुर्लभ होते हैं किन्तु यदि चोटी के लेखको-कवियो को छोड दिया जाये तो मूल लेखो-रचनाओ के लिए प्राप्य पारिश्रमिक के मुकाबले अनुवाद के लिए अधिक पारिश्रमिक मिलने पर भी योग्य अनुवादकों का दुर्लभ होना विचारणीय है। आज अनुवाद के लिए पहले से काफी अधिक पारिश्रमिक मिलता है और अनुवाद की माँग दिन पर दिन बढती जा रही है। देश मे भावनात्मक एकीकरण की आवश्यकता के प्रसग मे अनुवाद-कार्य को किसी भी समय राष्ट्रीय सेवा का दर्जा दिया जा सकता है! तो फिर क्या कारण है कि अब भी अच्छे या विशिष्ट अनुवादको की कमी है ? इसका कारण कदाचित् यह है कि कला के रूप में (कला मे अनुशासन निहित है) अनुवाद को यथोचित मान्यता नही दी गयी है। जिन लोगो ने यह कार्यभार ग्रहण किया है वे अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता को पूरी तरह नही समझ पाये हैं और दूसरी ओर जो अनुवाद करा रहे हैं, अर्थात् प्रकाशक, अकादेमियाँ, सरकारें आदि, वे यह नहीं जान पाये हैं कि अनुवाद की भाषा में कुछ योग्यता या वैज्ञानिक अथवा शिल्पिक कार्य के सम्बन्ध मे कुछ शिक्षा या प्रशिक्षा से अधिक वे क्या चाहते हैं। वे यह भी नहीं समझ पाये हैं कि उस कार्य के लिए साधारण शुल्क के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है ? इस शुल्क की दर साधारण दुकान के कार्यकर्ताओ के पारिश्रमिक से लेकर काफी अच्छी राशि तक है, जिससे कि सृजनात्मक लेखक को शीघ्र और अधिक उपार्जन उपलब्ध करने के लोभ से

अपने सृजनात्मक कार्य को छोडने के बदले मे थोडी-बहुत प्राप्ति हो जाये। अतः, जब अनुवादक को विशेष प्रकार के कलाकार, एक निपुण कारीगर, के रूप में अपना वास्तविक स्थान प्राप्त हो जायेगा और उस रूप मे सम्यक् मान्यता मिल जायेगी तभी इस विशिष्ट प्रकार के साहित्य की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग पूरी हो सकेगी।

('संस्कृति' से साभार)

साहित्य के अनुवाद की समस्या

साहित्य की जो मौलिक परिभाषा है, वह है जिसमे शब्द और अर्थ मे सामजस्य होता है'। सहित का भाव साहित्य है शब्द और अर्थ जहाँ पर एक दूसरे के साथ सयुक्त हो। दोनो मे से किसी की न्यूनता या अतिरेक न हो, ऐसे साहित्य अर्थात् सहभाव का नाम 'साहित्य' है। दोनो मे से किसी का महत्त्व कम न हो। दोनो का तादात्म्य हो। यही एक धर्म है जो उसे सगीत और शास्त्र से भिन्न करता है। शास्त्र से साहित्य भिन्न है, क्योकि शास्त्र मे शब्द की अपेक्षा अर्थ का महत्त्व अधिक होता है। इसी प्रकार, सगीत भी काव्य से भिन्न है। सगीत मे शब्द का ही महत्त्व है, अर्थ गौण है। इसमे एक ही शब्द को लेकर उसे अनेक रूपो मे रचा जा सकता है।

अत ऐसे साहित्य का अनुवाद कैसे किया जाये? शब्द और अर्थ का जहाँ तादात्म्य हो, वहाँ अनुवाद कैसे किया जाये? अर्थ के किसी एकक (घटक) के लिए एक ही शब्द हो सकता है। शास्त्र मे एक अर्थ का वाचक केवल एक शब्द होता है, लेकिन कविता मे अर्थ अनेक होते हैं। जल, पानी—साधारण शब्द आपस में एक-दूसरे के समान हो सकते हैं, लेकिन काव्य मे किसी एक शब्द का अर्थ एक ही होगा। इसलिए काव्य मे एक अर्थ का एक ही रूप म प्रयोग हो सकता है। अत इसका अनुवाद कैसे होगा, यह प्रश्न हमारे सामने है।

क्रोचे ने कहा है, अभिव्यक्ति ही व्यजना है। अनुवाद कभी सम्भव हो ही नही सकता। कला या काव्य अभिव्यक्ति के नाम हैं और अभिव्यक्ति ही कला है या काव्य है लेकिन साहित्य नहीं। अभिव्यक्ति अखण्ड होती है और अद्वितीय होती है और उसका दूसरा रूप नही हो सकता। काव्य का अर्थ है अभिव्यजना और अभिव्यजना अद्वितीय होती है। अत अनुवाद कैसे हो सकेगा? अत जो लोग काव्य के अनुवाद की बात करते हैं वे लोग अनुवाद के मर्मज्ञ नहीं हैं। और, जो अनुवाद हुए हैं वे तो दूसरी कलाकृतियाँ हैं। 'शकुन्तला' के अनेक अनुवाद हुए, 'इलियड'

के अनेक अनुवाद हुए, लेकिन ये तो अनुवाद नही हैं। वे तो दूसरी कृतियाँ हैं। 'शकुन्तला' की रचना को लेकर लक्ष्मणसिंह ने दूसरे रूप मे रच दिया लेकिन उसे अनुवाद नही कहा जा सकता। तत्त्व-रूप से बात तो यही है। यो यह ठीक है कि तत्त्वत काव्य का अनुवाद सम्भव नही है लेकिन व्यवहार मे यह बात लागू नही हो सकती। तब तो एक भाषा के सम्पर्क से दूसरी भाषा के विकास मे रुकावट आ जायेगी। अत क्रोचे की बात व्यवहार-रूप मे ठीक नही है। काव्य के विचारो का एक भाषा से दूसरी भाषा मे आदान-प्रदान होता रहा है। सभी पुरानी भाषाओं के विकास को देखा जाये तो क्रोचे की बात तत्त्व-रूप मे तो ठीक है, लेकिन व्यवहार-रूप में नही।

तत्त्व और व्यवहार मे सम्बन्ध तो है, लेकिन वे एक-दूसरे से अलग हैं। तत्त्व और व्यवहार म केवल यही भेद नही हैं, जीवन के ऊँचे स्तरो मे भी भेद मानने ही पडेंगे। वेदान्ती लोग कहते है कि तथ्य-रूप मे ससार मिथ्या है लेकिन व्यवहार-रूप मे सत्य है। द्वैत का अन्तर तो अद्वैत से ही हो सकेगा। अत तत्त्व और व्यवहार मे भी भेद मानना ही पडेगा।

लेकिन आज तक अनुवाद अनेक हुए हैं। इससे कई लाभ हुए हैं। इससे भाषा का विकास हुआ है। अनुवाद की उपयोगिता माननी ही पड़ेगी और यह सिद्ध भी है। इससे सस्कृति और सभ्यता का विकास भी हुआ है। इसी आधार पर व्यवहार की उपयोगिता हम ग्रहण करते हैं। अत उपयोगिता के आधार पर अनुवाद कैसे हो सकता है, इसी बात पर हम विचार करेंगे।

व्यवहार-रूप मे साहित्य से अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं। साहित्य से अभिप्राय है ऐसे ग्रन्थ-समूह का, ऐसे वाड्मय का, जो कि हमारे मन का रजन करता है। साहित्य ऐसी रचनाओं का समवाय है जो हमारे मन का रजन करती हैं। और वह भी वस्तु (मैटर) और शैली (मैनर) द्वारा ही। यह एक पारिभाषिक व्याख्या है। कथ्य (मैटर) और कथन (मैनर) के समवाय का नाम ही साहित्य है।

भाषा या साहित्य के आदर्श का यह प्रश्न नही है। लेकिन साहित्य के रूप में इसे व्यवहार-दृष्टि से ही देखना पडेगा और ऐसा होना भी चाहिए।

विषयवस्तु (मैटर) और शैली (मैनर) इन दोनो का अनुवाद ही हमे करना पडेगा। अब प्रश्न यह है कि विषयवस्तु क्या चीज है ? यहाँ पर भी व्यावहारिक दृष्टि से देखना चाहिए और वे हैं विचार और भाव। साहित्य के कथ्य की रचना भाव और विचार या बुद्धि-तत्त्व से होती है। किसी कृति मे निबद्ध विचारो या भावो का दूसरी भाषा के माध्यम से सम्प्रेषण करना अनुवाद है। 'मेघदूत' मे भाव, विचार और घटना—इन तीनो का हिन्दी मे रूपान्तर ही अनुवाद है और यह अपने-आप में कोई कठिन बात नही। अनुवाद्य विषय जितना स्थूल होगा अनुवाद उतना ही सरल होगा और जितना सूक्ष्म होगा वह उतना ही मुश्किल होगा।

स्थूल या स्थिर वस्तु को ग्रहण करना सरल होता है, सूक्ष्म या अस्थिर का ग्रहण करना कठिन—जैसे कि पारे के बारे मे कहा जाता है। कथ्य या भाव जितने मूर्त, या स्पष्ट, या स्थूल होंगे, अनुवाद उतना ही सरल होगा और जितने ही अमूर्त, या अस्पष्ट, या तरल होंगे उतना ही उनका अनुवाद कठिन होगा। उदाहरणार्थ—पृथ्वी स्थूल है, अग्नि उससे सूक्ष्म, पानी और सूक्ष्म, और आकाश और सूक्ष्मतर है। घटनाएँ, विचार और भाव—यही स्थूलता का क्रम है। स्थूल का लक्षण है—जो जितनी सरलता से इन्द्रियग्राह्य होगा वह उतना ही स्थूल है। लेकिन सूक्ष्म मे ऐसी बात नही है। घटनाओ की अपेक्षा विचार अधिक सूक्ष्म होते हैं। लेकिन विचार या भाव मे से तो साफ-साफ नही कहा जा सकता कि कौन-सा सूक्ष्म है। साइकिल-एक्सीडेंट मे साइकिल का टूटना और उसका ठीक करवा देना तो स्थूल है लेकिन जिसको चोट लगी है उसके मन की क्या स्थिति है और जो आघात लगा है, वह उतना ही कठिन होगा। चेतन मन के आघात और अवचेतन मन के आघात मे अन्तर है। अब के एक्सीडेंट को देखकर आपको यदि पुरानी बात याद आ जाये तो वह पुरानी बात अपने-आपमे कठिन है। अत यह कहे कि घटनाओ का अनुवाद अपने-आपमे सरल है लेकिन भाव जो हैं, जो इन्द्रियग्राह्य हैं, उनका अनुवाद अपेक्षाकृत कठिन है। भय भाव के अनुभाव हैं वैवर्ण्य, रोमाच, कम्प आदि आदि—ये बातें विशेषज्ञो ने बतायी और इनका अनुवाद अपेक्षाकृत सरल होगा। अत यह कहे कि कथ्य का अनुवाद असम्भव है, यह ठीक नही है। क्रोचे ने जो कहा वह भी ठीक नही है। अत कथ्य का अनुवाद अपेक्षाकृत सरल है। उसका आंशिक सम्प्रेषण भी सम्भव है और कथ्य मे घटना, विचार और भाव जो मूर्त हैं (प्रत्यक्ष इन्द्रियगम्य) उनका अनुवाद सरल है। इसलिए कथ्य साहित्य का अनुवाद सबसे सरल है या जो विचार-प्रधान साहित्य है उसका अनुवाद सरल है। काव्यशास्त्र, आलोचना आदि का अनुवाद सरल है। जैसे-जैसे कथ्य का महत्त्व घटता जायेगा (प्रबन्धकाव्य—'रामायण'—का अनुवाद सरल है लेकिन 'कामायनी' का अनुवाद कठिन है), वैसे-वैसे अनुवाद मे कठिनाई होती जायेगी।

अब प्रश्न है शैली का। इसका अनुवाद अधिक कठिन है लेकिन इसकी अपेक्षा वस्तु का अनुवाद सरल है। शैली का महत्त्व जिस चीज में जितना अधिक होगा उतना ही अनुवाद कठिन होगा। जहाँ वस्तु का महत्त्व अधिक है वहाँ अनुवाद सरल, लेकिन जहाँ शैली का अधिक महत्त्व है वहाँ कठिन।

शैली का रूपान्तर करना कहाँ सम्भव है, इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। इमेज या बिम्ब, मूर्त विचार या भाव को जब हम शब्दबद्ध करते हैं (या शब्द मूर्तित करते हैं) वही शैली है। शैली की अपेक्षा विचार अधिक सूक्ष्म होते हैं। वैसे शैली में मूर्त विचारों का प्रकटीकरण होता है, अत वह स्वय मे ही कठिन है। शैली अपने आपमें ही एक प्रकार का अनुवाद—मूर्त अनुभूति

या शब्दानुवाद—है। मूल विचारो को शैलीबद्ध करना ही अपने-आपमे अनुवाद है। किसी भी अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति असम्भव होती है। अत वह तो अश-रूप मे ही अभिव्यक्ति होती है। शैली अपने आपमे एक अपूर्ण अभिव्यजना है—भाव या विचार को अभिव्यक्त करने के लिए। अत अपूर्ण को दूसरी भाषा मे रूपान्तर करना तो और भी अपूर्ण हुआ। अत शैली भी अपने-आपमे एक अत्यन्त अपूर्ण अभिव्यक्ति है।

बिम्ब (मूर्त) शैली का प्रसिद्ध अवयव है। छाया, प्रकाश, अन्धकार, प्रेम का रग लाल है—ये चाक्षुप बिम्ब हैं। भारत-कोकिला, मैथिल कोकिल विद्यापति सुनने मे, स्पर्श—चन्दन, आँखो मे कर्पूर लगाना, प्रियदर्शन, चन्दनलेप के समान हैं—स्पर्श द्वारा यह अनुभव होता है। 'यूअर वर्ड्स आर लाइक ए वाम'—आस्वाद-मधु मधुर का वाचक है। ये सारे बिम्ब हैं। ये बिम्ब किस प्रकार से शब्दो पर आरूढ होकर हमारे विषय बन जाते हैं? पचतन्मात्राएँ—इन्द्रिय-सवेदना। ये सवेदनाएँ शब्दो पर आरूढ होकर हमारे सामने आती हैं। अब प्रश्न यह है कि उनका अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा मे हो सकता है या नहीं? इन बिम्बो मे अपनी सीमाएँ हैं। प्रत्येक भाषा के अपने सस्कार हैं। भाषा-प्रयोक्ताओ के अनुभव या सस्कार भाषा पर आरूढ हो जाते हैं और प्रत्येक भाषा प्रयोक्ताओ के सस्कारो को ग्रहण करती है। वार्म' के लिए 'गर्म' का अर्थ 'प्रिय' नही है, वह अनुवाद कम है। पश्चिमी देशो में 'वार्म' का अर्थ सुखद है लेकिन यहाँ पर नही। 'दिस लैटर लैंवस वार्म्थ'—इस पत्र मे स्नेह नही। यहाँ गरमी शब्द इस्तेमाल नही किया जायेगा। हमारे यहाँ अग्नि को दुख के रूप मे समझा जाता है, लेकिन पश्चिमी देशो में सुखद रूप में। अत भाषा मे सस्कारो का प्रभाव पडता है।

ऐसे ही 'शीतल' और 'कोल्ड' मे बहुत अन्तर है। पश्चिम मे 'कोल्ड' का अर्थ और है लेकिन भारत मे 'शीतल' का अर्थ और है।

लेकिन कुछ ऐसे बिम्ब हैं जोकि सभी जगह समान और सभी देशो मे प्राय समान ही होते हैं, जैसे उषा, ज्योत्स्ना, चन्द्र, फूल, सूर्य, आदि। लेकिन भाषा के सस्कार को दृष्टि मे रखकर ही अनुवाद किया जाना चाहिए। 'ऐज सापट ऐज ए फ्लावर', ऐज लवली ऐज ए फ्लावर', 'ज्ञान का सूर्य'—ऐसे कई प्रत्यक्ष इन्द्रिय-गम्य बिम्ब है जो कि प्राय सभी देशो मे समान होते हैं और उनका शाब्दिक अनुवाद किया जा सकता है। चन्द्रमा का सौन्दर्य प्रत्येक देश मे समान रहा है और रहेगा। अत ऐसे प्रसगो म अनुवाद करना आसान होता है।

'हैवन वॉक्स ग्रान अर्थ (शेक्सपियर) के लिए 'मूर्तिमान स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आया ह' तो लगभग उसी शब्द का वाचक होगा। 'यद्दु लब्ध नेत्र निर्वाण' (दर्शन)—'शकुन्तला' मे भी कुछ मिलते-जुलते शब्द कहे गये हैं। लेकिन इसमे

'निर्वाण' शब्द सूक्ष्म है और उसका अनुवाद कठिन है। अंग्रेजी का 'हैवन' पुराण का शब्द है लेकिन 'निर्वाण' शब्द दर्शन का है और इसमे अनुवाद करने मे कठिनाई होगी। अत बिम्ब जितना स्थूल होगा उतना ही अनुवाद सरल और जितना सूक्ष्म उतना ही कठिन होगा।

अभिधा (स्थूल, स्थिर), लक्षणा, व्यजना पहला समय और स्थान से प्रभावित है। लक्षणा का अर्थ अपेक्षाकृत भिन्न होगा, उसमे थोडी कल्पना का प्रयोग होगा। 'वह व्यक्ति गधा है'—ऐसा प्रयोग करना लक्षणा है और इसमे अर्थ समझने मे थोडी और कठिनाई हुई। इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति बहुत अधिक मूर्ख है। अभिधा का अर्थ एक ही होगा लेकिन व्यग्यार्थ अनेक होग। 'घण्टा बज गया' का अर्थ अनेक व्यक्ति अनक रूपो मे समझ लेते हैं। लक्ष्यार्थ के अनुवाद मे कठिनाई होती है लेकिन वह भी सम्भव हो सकता है। अभिधा तो धारणा (कनसेप्ट) है, जैसे पानी। लक्षणा बिम्ब है, जैसे भाव, उपमान, रूपक (अलकार)। इन सबका भाषा के प्रयोग मे ध्यान रखकर और भाषा के सस्कारो को सामने रखकर अनुवाद सम्भव हो सकता है। हवा का अर्थ है 'तेजी' अर्थात् घोडा हवा हो गया।

उपमान, प्रतीक आदि का अनुवाद किसी सीमा तक सम्भव है। जहाँ लक्षणा सहायक होती है, जहाँ सास्कृतिक वातावरण का भेद नही है वहाँ अनुवाद हो सकता है, लेकिन जहाँ सस्कृति का भेद बढ़ गया है वहाँ इसका अनुवाद नही हो सकता। वहाँ पर तो पर्याय देने होगे और वे भी समानार्थक (पैरेलल)। 'लीड मी फ्राम डार्कनैस टु लाइट' लक्षणा है लेकिन सस्कृति के भेद होन के कारण समानार्थ शब्दो का ही प्रयोग करना पडेगा। दीप के लिए लैम्प, 'कुलदीप' का अंग्रेजी मे अनुवाद करना कठिन हो सकता है। इसकी कुछ सास्कृतिकता है।

व्यजना का अनुवाद सबस कठिन होता है क्योकि वह सबसे अधिक अस्थिर होती है, अत जिसकी शैली मे व्यजना का जितना आधिक्य होता है उतना ही अनुवाद कठिन होता है। 'कामायनी', छायावादी कविता, नयी कविता आदि का अनुवाद कठिन है।

कहावत या मुहावरा कही-कही मुहावरा शुद्ध लाक्षणिक रूप मे प्रयुक्त होता है, या कही-कही शुद्ध 'मेटाफर' होता है। 'पानी पानी हो गया'—यह 'आग से पानी होना' के मूल रूप से बना और मूल मे यह एक लाक्षणिक प्रयोग था लेकिन बाद मे वह बदल गया। लाक्षणिक चमत्कार के कारण दो भाषाओ के मुहावरे एक-से बन जाते हैं। कहावत का सम्बन्ध जनता से होता है। सस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, अत कहावतो का शब्दानुवाद प्राय नही हो पाता और किया भी नही जाता है। उनके लिए समानान्तर उक्तियो का ही प्रयोग करना चाहिए। मुहावरों के लिए समानार्थ उक्तियो का प्रयोग, लेकिन कहावतो के लिए समा-

नान्तर उक्तियों का प्रयोग होता है।

अलंकार · अर्थालंकार का सम्बन्ध बिम्ब के साथ है; अतः लक्षणा के समान ही सरल है। लेकिन शब्दालंकार का अनुवाद अपेक्षाकृत कठिन होता है। इसका कारण संस्कृतियों की भिन्नता है।

लय का अनुवाद · शब्द-सम्बन्ध ही लय है। शब्दों के सम्बन्ध से ही लय का निर्माण होता है। भाषा का उच्चारण लय से सम्बद्ध है और प्रत्येक भाषा में लय में अन्तर होता है। उर्दू और संस्कृत, या उर्दू और हिन्दी में समानता है क्योंकि उनकी संस्कृतियों में इतना अन्तर नहीं है। अतः जितना सम्बन्ध दूर का होगा उतना ही लय का अनुवाद कठिन होगा और जितना ही लय का सम्बन्ध निकट होगा उतना ही अनुवाद सरल होगा। प्रत्येक भाषा में विशेष प्रकार के भाव को व्यक्त करने के लिए विशेष प्रकार की लय होती है। अंग्रेजी में ब्लेक वर्स, हीरोइक कपलेट का वीरता के लिए प्रयोग होता है। वीर-भाव (वीर छन्द), शृंगार स्वर (मात्रिक), ध्वनि का आवर्त्त अधिक (वर्णिक)। मूल भाव, उच्चारण की लघुता और दीर्घता को देखकर या जाँचकर मिलती-जुलती लय को इस्तेमाल किया जा सकता है। पन्त, निराला ने ऐसे कई प्रयोग किये हैं।

सिद्धि मूलत अनुवाद क्या है ? अनुवाद की सिद्धि क्या है ? अनुवाद मूल जैसा प्रतीत होता है—इसके दो अर्थ हैं—(1) मूल रूप को अपनाना चाहिए और उसको अपनाकर अपनी भाषा को फिर से मौलिक बनाया जाये। 'टु रीक्रियेट द ओरिजिनल'—मूल की पुन सृष्टि—यही अनुवाद का आदर्श है और साहित्य में केवल यही होता है। अत· सफल अनुवाद वही होगा जिसमें मूल की पुन सृष्टि होगी। शेक्सपियर का अनुवाद मौलिक सा है। इसका अर्थ है, यदि शेक्सपियर हिन्दी में लिखते तो ऐसे ही लिखते।

अब अनुवाद के दूसरे अर्थ को लीजिए। (2) यह अनुवाद अनुवाद प्रतीत नहीं होता लेकिन मौलिक लगता है। अनुवाद की मर्मज्ञता अनुवाद की सिद्धि में ही होती है। अत· अनुवादक का कर्त्तव्य है कि वह मूल लेख को अपने-आपमें रमाये। अपने सृजन को जब तक मूल में नहीं मिलाया जायेगा तथा जब तक मौलिक रचना नहीं होगी तब तक उसका अनुवाद अनुवाद नहीं होगा।

महेन्द्र चतुर्वेदी

साहित्य का अनुवाद

अनुवाद की समस्याओ पर जब हम विचार करते हैं तो वस्तुत विषय और विषयी के अभेद के आधार पर व्यावहारिक दृष्टि से अनुवादक की समस्याओ पर ही विचार करते हैं — अर्थात् उन समस्याओ के विवेचन पर हमारी दृष्टि रहती है जिनका सामना अनुवाद की प्रक्रिया मे अनुवादक को करना पड़ता है। यो आज की परिस्थितियो पर दृष्टिपात करें तो अनुवाद की समस्या केवल एक है— अनुवादको का अभाव। हमारे यहाँ प्राय सभी भाषाओ में अच्छे अनुवादको का अभाव है—यह एक निर्विवाद तथ्य है, और यह तब है जब अनुवादक के लिए बहुत ही अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। आज का युग हमारी सभी भाषाओ मे निर्माण का युग है। सृजनात्मक साहित्य के धरातल पर यद्यपि हम निष्क्रिय नहीं परन्तु निर्माणात्मक साहित्य के क्षेत्र मे विगत दशक मे हमारी गति कही अधिक तीव्र रही है। साहित्य की समृद्धि की दृष्टि से अनुवादक की महत्ता मौलिक रचनाकार से किसी तरह कम नही, बल्कि वह यदि राष्ट्र-सेवा का भी गर्व करे तो अनुचित न होगा। विविध भाषाओं को परस्पर निकटतर लाने का प्रयत्न करके वह राष्ट्र की सेवा करता है— इसमे सन्देह नही। आर्थिक दृष्टि से देखें तो अच्छे अनुवादक को जो प्रतिफल अपने परिश्रम का मिल जाता है, वह मूर्धन्य मौलिक रचनाकारो के अतिरिक्त औरो को शायद ही प्राप्त होता हो। अनूदित साहित्य की माँग के साथ ही-साथ उसकी महत्ता भी निरन्तर बढती जा रही है। अन्तरग दृष्टि से देखें तो सत्साहित्य के अनुवादक को अपने कार्य का सम्पादन करके आत्म परितोष भी कम नही होता। किन्तु इन सभी प्रेरणाओ के बावजूद हमारे यहाँ अच्छे अनुवादको का अकाल है। मैं समझता हूँ, इसके तीन प्रमुख कारण हैं

एक—अनुवाद बडा ही कठिन कार्य है; कई दृष्टियो से वह मौलिक लेखन की अपेक्षा कठिनतर है किन्तु इस सत्य के सर्वथा विपरीत आम तौर से लोगो में

—पढ़े-लिखे लोगों में भी —यह धारणा प्रचलित है कि अनुवाद-कार्य सहज कार्य है और कोई भी व्यक्ति थोड़े-से परिश्रम से यह कार्य कर सकता है। इस भ्रान्ति के निराकरण की बड़ी आवश्यकता है।

दो—कुछ तो उपर्युक्त भ्रान्ति के व्यापक प्रसार के कारण और कुछ हमारी स्वाभाविक अनुदारता के कारण अनुवादक को उसके कठिन कार्य के अनुरूप गौरव प्राप्त नहीं हो सका है। अनुवाद-कला के विकास और उत्कर्ष में यह सबसे बड़ी बाधा है।

तीन—हमारी राष्ट्रीय संस्थाएँ शायद इस कार्य में पर्याप्त सावधानी नहीं बरत रही। व्यक्तिगत सम्बन्धों और पारस्परिक राग-द्वेष के धुएँ में योग्यता का आलोक हठात् आच्छन्न हो जाता है और अयोग्य हाथों में पड़कर श्रेष्ठ साहित्य का गौरव भी विलीन हो जाता है। वस्तुत किसी भी अन्य-भाषीय कृति के अवमूल्यन का सबसे सरल ढंग यही है कि उसे असमर्थ हाथों में अनुवाद के लिए सौंप दिया जाये। इसीलिए टाल्सटाय ने कहा था . *अज्ञान-प्रचार के लिए मुद्रित सामग्री से शक्तिशाली साधन और कोई नहीं हो सकता।*

अत अनुवाद की सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि इस कठिन कार्य के प्रति एक सही परिप्रेक्ष्य उत्पन्न किया जाये, संस्थाओं में ऐसी दायित्व-भावना जगायी जाये कि वे योग्यता को ही एकमात्र कसौटी मानें, अनुवाद-विषयक व्यापक भ्रान्ति का निराकरण हो और अनुवादक को उसका उचित गौरव प्राप्त हो। क्रोचे ने अपने 'अभिव्यंजना-सिद्धान्त' का प्रतिपादन करते हुए लिखा था . या तो अभिव्यंजना अभिव्यंजना है या वह अभिव्यंजना नहीं है। 'अच्छी' और 'बुरी' अभिव्यंजना निरर्थक पद हैं। कुछ यही बात अनुवाद के सम्बन्ध में कही जा सकती है—या तो अनुवाद अनुवाद है, या अनुवाद नहीं है। 'अच्छे' या 'बुरे' अनुवाद की कल्पना निरर्थक और निराधार है।

इस संक्षिप्त भूमिका के बाद अब हम अनुवाद-प्रक्रिया की प्रत्यक्ष समस्याओं का विश्लेषण करेंगे। ये समस्याएँ परिस्थिति भेद से कहीं कम, कहीं अधिक, गम्भीर हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में मुख्यत ये तीन प्रश्न उठाये जा सकते हैं :

(1) अनुवाद की भाषा और मूल की भाषा म परस्पर कोई सांस्कृतिक अथवा आनुवंशिक सम्बन्ध है, या नहीं ?

(2) अनुवाद्य सामग्री का स्वरूप क्या है ?

(3) अनुवाद किसके प्रति उद्दिष्ट है ?

इनमे स प्रत्येक प्रश्न के उत्तर के अनुसार अनुवादक की समस्याएँ थोड़ी-बहुत भिन्न होंगी। भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न बड़ा मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। यदि मूल और अनुवाद की भाषाओं की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एक-

सी हो अथवा उनमे निकट आनुवंशिक सम्बन्ध हो तो अनुवादक का कार्य अपेक्षाकृत सरल हो जाता है—किन्तु यदि उनमे वैसा कोई सम्बन्ध नही है, यदि उनकी प्रवृत्तियाँ सर्वथा भिन्न हैं, तो उसका कार्य अत्यन्त दुष्कर होता है। इस दृष्टि से विदेशी भाषाओ की अपेक्षा भारतीय भाषाओ से अनुवाद करना अपेक्षाकृत सरल है।

अनुवाद्य सामग्री का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। डि क्विंसी ने वाङ्मय के दो व्यापक भेद किये हैं—शक्ति का साहित्य[1] और ज्ञान का साहित्य[2]। इन्ही को भारतीय साहित्यशास्त्रीय शब्दावली मे 'काव्य' और 'शास्त्र' की सज्ञा से अभिहित किया गया है। इन दोनो के अनुवाद की समस्याएँ भिन्न हैं और दोनो मे पर्याप्त भेद है।

अनुवाद-प्रक्रिया के दो अवस्थान होते हैं . प्रथम को हम अर्थवत्ता-बोध का अवस्थान कह सकते हैं और दूसरे को सम्प्रेषण का। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया मूल की अर्थवत्ता को—आत्मा को—एक शरीर मे दूसरे शरीर मे ले जाने की प्रक्रिया है। यही से अनुवादक की अन्तरग समस्या का आरम्भ हो जाता है। 'ट्रासलेशन' का अर्थ ही वस्तुतः 'पारवहन' (carrying over) है और 'अनुवाद' का "किसी की कही हुई बात को (दूसरी भाषा मे) कहना।" किन्तु प्रश्न उठता है : यह 'पारवहन' किसका होता है? अर्थ का? अथवा विचार का? या भाव—अनुभूति का? फिर प्रश्न उठता है—क्या भाव की तरलता को उसके रूप-विधान अथवा भाषा से विच्छिन्न करके हृदयगम किया जा सकता है? दूसरे शब्दो मे, क्या भाव और भाषा का अथवा रूप-विधान का सम्बन्ध अविच्छेद्य नही होता? काव्य के सन्दर्भ मे इस प्रश्न की महत्ता बहुत अधिक हो जाती है। इसीलिए मैंने 'अर्थवत्ता' शब्द का प्रयोग किया है, 'अर्थ' का नही—मेरा मन्तव्य काव्य की आत्मा, काया और परिच्छद सभी की सार्थकता के समन्वित बोध से है। मूल रचना के इस सर्वांग बोध के लिए आवश्यक है कि अनुवादक मूल रचनाकार के साथ, और साथ-ही-साथ उसके कृतित्व के साथ, पूर्ण तादात्म्य कर ले।

अनुवादक कलाकार होता है। भारतीय काव्य-शास्त्र मे कलाकार (कवि) से तीन गुणो की अपेक्षा की गयी है : शक्ति (अर्थात् प्रतिभा), व्युत्पत्ति और अभ्यास[3]। इन तीनो तत्त्वो की महत्ता का तारतम्य भी यही है। 'प्रतिभा' कला-

1. Literature of Power.
2. Literature of Knowledge.
3. नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुत च बहुनिर्मलम् ।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्या, कारण काव्यसम्पदः ॥ दण्डी (काव्यादर्श, 1-103)
तस्यासारनिरासात् सारग्रहणाच्च चारुण.करणे ।
त्रितयमिद व्याप्रियते शक्तिर्व्युत्पत्तिरभ्यासः ॥ रुद्रट (काव्यालकार, 1 14)

कार का सबसे बडा गुण है। प्रतिभा की चकाचौंध मे कलाकार के सारे दोष अदृश्य हो जाते हैं—किन्तु अनुवादक की स्थिति यह नहीं। प्रतिभा उसके लिए अनेक समस्याओ की जन्मदात्री बन जाती है। प्रतिभाशाली अनुवादक जब तक मूल रचनाकार की आत्मा का साक्षात्कार न कर लेगा, कभी अपने कार्य मे प्रवृत्त न होगा—सतही दृष्टि से रचना का अवलोकन कर लेने-भर से न तो उसका मन मान सकता है और न वह मूल कृतिकार के प्रति न्याय कर सकता है। उसे तो काव्य-रचना की सम्पूर्ण परिस्थितियो और प्रेरणाओ के सन्दर्भ मे मूल रचनाकार के सृजन-अनुभव मे से ही गुजरना होता है। यहाँ उससे दोहरे सयम की अपेक्षा होगी—उसे मूल लेखक और उसके कृतित्व दोनो के सन्दर्भ मे अपने व्यक्तित्व का तिरोभाव करना होगा, अपनी जीवन-भर की अर्जित अनुभूतियो, राग-विराग, विचारधारा और पूर्वाग्रहों से ऊपर उठना होगा। इस प्रकार एक ओर तो अनुवादक से दोहरे अनुशासन की और दूसरी ओर उसकी सवेदनशीलता के दोहरे प्रसार की अपेक्षा होती है। जहाँ इस सयम में ढील हुई, और अनुवादक ने किसी भी रूप मे अपने व्यक्तित्व का मूल कृति पर आरोप किया, वही अनुवाद के भ्रष्ट होने के लिए भूमि तैयार हो जाती है।

मूल रचनाकार से तादात्म्य की यह समस्या अपने-आप में बडी विकट है और कृती-धर्म के स्वरूप मे ही निहित है। वस्तुत काव्य-रचना की प्रक्रिया, अपने भावन को शब्द के स्थूल धरातल पर उतार लाने की प्रक्रिया, भी एक प्रकार का 'अनुवाद' (पारवहन) ही है। हर कला अव्यक्त को व्यक्त रूप देने का, मौन चेतना को मुखर शब्द मे परिणत करने का, ही प्रयत्न मात्र है। सृजन के क्षणो मे कवि की अनुभूति मे जो तीव्रता होती है, उसे बाँध पाने मे भाषा असमर्थ रहती है, अत सामाजिक को जो कुछ मिल पाता है वह उस अनुभूति की क्षीण झलक-भर होती है।[1] काव्य की भाषा की स्थिति प्राय वही होती है जो विरह-व्यथा की कथा कहते समय रत्नाकर ने दिखायी है "नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सो, रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सो।" शब्दो की सहज दरिद्रता मे प्रतिबिम्बित अनुभूति की इस क्षीण प्रतिच्छवि के सहारे अनुवादक को मूल स्रोत तक पहुँचना होता है। शब्द की इस दरिद्रता—अनुभूति की तीव्रता को बाँध पाने की अशक्तता—के कारण ही किसी ने कहा है कि 'कला का चरम स्वरूप मौन है'।

---

1 यदि यह प्रभाव अपनी मूल शक्तिमत्ता और शुचिता में स्थायी हो जाये तो परिणाम कितने महान हो—कहा नहीं जा सकता। परन्तु जब रचना प्रारम्भ होती है तो प्रेरणा का ह्रास शुरू हो चुका होता है ससार के सामने जो उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट कविता आज तक आयी है वह भी कदाचित कवि के मूल भावन की क्षीण छाया मात्र ही है।' (शेली —इन डिफेंस ऑफ पोएट्री) पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा, पृ० 179।

अर्थवत्ता-बोध के मार्ग मे दूसरी कठिनाई—और यह अनुवादक की बहिरंग समस्या है—'शब्द',की है। शब्द के पूर्ण ज्ञान के बिना अवितथ अर्थ और अर्थ-ज्ञान के बिना रचना की आत्मा का साक्षात्कार सम्भव नही। हर भाषा की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, उसके शब्दो की अपनी रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, अपने सस्कार होते है। हर शब्द के साथ अर्थ की कुछ छायाएँ-छवियाँ जुडी रहती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि कोई दो शब्द पर्याय नही होते हैं। सामान्य शब्दो की यह स्थिति होती है तो विशिष्ट शब्दो की स्थिति और भी जटिल होगी ही। उदाहरणार्थ, 'रस','सस्कार', 'माया', 'मोह' आदि भारतीय शब्द ऐसे हैं जिनका किसी अन्य भाषा मे अनुवाद कदाचित् ही सम्भव हो—इनके साथ भारतीय चेतना-सवेदना का युग-युगो का सम्बन्ध है। काव्य में 'शब्द' की स्थिति और भी वैशिष्ट्य-समन्वित हो जाती है। काव्य की मूल शक्ति तो व्यजना होती है। यहाँ शब्द-कोशो के अर्थ निरस्त हो जाते है। व्यजना का प्रसार तो असीम होता है, अत कवि-वचन की अर्थवत्ता को ग्रहण करने के लिए उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दो की आत्मा मे परिचय होना अनिवार्य है। फिर, शब्द-विन्यास का, रूप-विधान का, ध्वनि-प्रतिमान का अपना अलग महत्त्व है। वर्ड्सवर्थ ने यहाँ तक कहा है कि कविता और सामान्य गद्य की भाषा मे कोई तात्त्विक अन्तर हो ही नही सकता। कविता की भाषा में यदि औदात्य, कान्ति और मर्मस्पर्शी शक्ति होती है तो वह वस्तुत शब्द-चयन, विन्यास और छद का चमत्कार होता है। वस्तुत काव्य के इन बहिरग तत्त्वो की महत्ता समझे बिना उसके अन्तरग सौंदर्य तक पहुँचा ही नही जा सकता। एक उदाहरण लीजिए

'नभ लाली चाली निसा
चटकाली धुनि कीन
रति पाली आली अनत
आए वनमाली न' (बिहारी)

यहाँ शब्द-विन्यास और ध्वनि-योजना का चमत्कार स्पष्ट है। जहाँ एक ओर कवि ने अत्यन्त मसृण पदो की योजना द्वारा अपूर्व माधुर्य की सर्जना की है, वही ह्रस्व-दीर्घ स्वरो के आयोजन के द्वारा प्रतीक्षारता, आकुलमना, खडिता नायिका की मन स्थिति का सकेत भी बडे कौशल से दे दिया है जिसके लिए काल की गति ही मानो कुण्ठित हो गयी हो। पद विन्यास मे निहित नाद-सौन्दर्य और व्यजना के समेकित प्रभाव को ग्रहण किये बिना केवल अर्थ-ग्रहण अपने आप मे अधूरा ही रहता है।

अत काव्य-रचना के प्राण-तत्त्व को हृदयगम करने के लिए भाषा के हर शब्द का अन्तरग परिचय, उसकी व्यजना और लक्षणा-शक्ति का आकलन, शब्द-विन्यास और ध्वनि-प्रतिमान की समझ—ये सभी आवश्यक है। इनके बिना

अनुवादक कभी कृतकार्य नहीं हो सकता।

ये काव्य (व्यापक अर्थ में—अर्थात्, साहित्य) के अनुवादक की समस्याएँ हैं। कविता और गद्य-साहित्य के धरातल पर अनुवादक की अन्तरंग समस्याओं में मूलत. कोई भेद नहीं होता—पर मात्रा-भेद अवश्य होता है। कविता के अनुवादक की कठिनाइयाँ निश्चय ही अधिक होंगी क्योंकि उसमें भावना की तरलता, प्रतीकात्मकता और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता अधिक होती है। बहिरंग दृष्टि से गद्य-साहित्य के अनुवादक की समस्या, शब्द-विन्यास, ध्वनि-प्रतिमान आदि के स्तर पर निश्चय ही बहुत कम हो जायेगी क्योंकि गद्य-विधाओं में इनकी इतनी महत्ता नहीं होती और अल्पाभिव्यक्ति (under-expression) का वैसा चमत्कार भी नहीं होता जैसा कविता में।

इसके अतिरिक्त एक और समस्या भाषा के स्वरूप में ही निहित है। भाषा सम्प्रेषण का माध्यम होती है : उसकी स्थिति किसी विशिष्ट देश-काल और समाज को लेकर होती है। इस प्रकार वह देश-काल और समाज-विशेष में आबद्ध होती है। समाज के परिवर्तन के साथ-साथ किसी भी भाषा के शब्द और ध्वनि-समुच्चय की सार्थकता भी बदलती है। यह परिवर्तन भी अर्थवत्ता-बोध के लिए एक कठिनाई उपस्थित कर सकता है—इसका अनुभव अनुवादक को तब होता है जब वह किसी ऐसे लेखक का अनुवाद करने बैठे जो उसका समसामयिक न हो। इस *धरातल पर कृतकार्य होने के लिए आवश्यक है कि अनुवादक का तत्कालीन समाज* का व्यापक अध्ययन हो और उसकी इतिहास-भावना पर्याप्त प्रबुद्ध हो।

कुल मिलाकर, काव्य का—विशेषत. कविता का—अनुवाद बड़ा दुष्कर कार्य होता है और इसके लिए असाधारण क्षमता और अभ्यास की अपेक्षा होती है। कदाचित् इस मार्ग की दुस्साध्यता को लक्ष्य करके ही किसी ने कहा है कि 'अनुवादक (तो) प्रवचक होता है।'

शास्त्र के अनुवाद का जहाँ तक प्रश्न है— मूल बात तो है ही कि लेखक के प्रति अनुवादक की निष्ठा होनी चाहिए और विषय के प्रति भी, किन्तु बहिरंग समस्याओं का स्वरूप यहाँ बदल जाता है। कविता का अनुवादक तो बड़ी 'साँकरी गली' का राही होता है, पर यहाँ वह अपेक्षाकृत अधिक ठोस और विस्तृत भूमि पर होता है। शास्त्रकार किसी प्रकार की रहस्यमयता को प्रश्रय नहीं देता, न दे सकता है। वस्तुत. उसका लक्ष्य ही (आह्लादित करने के) काव्यकार (के लक्ष्य) से भिन्न होता है—ज्ञान का विकिरण। उसके वक्तव्य का आधार होता है—शब्द की अभिधा शक्ति। यदि भाषा पर उसका अधिकार है तो वह जो कुछ कहेगा ऐसी शब्दावली में कहेगा कि अर्थ-भ्रान्ति की कोई गुंजाइश न रहे। अस्पष्टता और सन्दिग्धार्थता शास्त्रीय भाषा का सबसे बड़ा दोष है। किन्तु फिर भी शब्द का अर्थ उसके विशिष्ट प्रसंग में ही ग्रहण किया जाना चाहिए—प्रसंग

की महत्ता यहाँ भी अतर्क्य है। शब्द की बारीकियो को समझे बिना अर्थ का बोध सम्भव ही नही है। यहाँ मैं एक सच्ची घटना का उल्लेख करने का मोह सवरण नही कर पा रहा हूँ—एक दिग्गज भाषावैज्ञानी 'परमाणु-भौतिकी' (Atomic Physics) पर कोई ग्रन्थ पढ रहे थे। उसमें 'atomic plant' शब्द आते ही एक झटके से वे रुक गये और उन्होंने तुरन्त एक वनस्पतिशास्त्र-वेत्ता से जानना चाहा कि यह किस विशिष्ट 'वनस्पति' का नाम है ! प्रसग-च्युत शब्द कितना अनर्थ कर सकता है—यह इसका एक उदाहरण है !

अनुवाद-प्रक्रिया के प्रथम अवस्थान—अर्थवत्ता-बोध—के बाद दूसरा अवस्थान अपनी भाषा मे उस अर्थवत्ता के सम्प्रेषण का आता है। पहला अवस्थान बहुत हद तक एक मानसिक प्रक्रिया है जिसकी परिणति दूसरे अवस्थान मे होती है। अनुवाद का पाठक इस दूसरे अवस्थान मे निहित परिणति के आधार पर ही यह अनुमान लगा सकता है कि अनुवादक पहले अवस्थान मे कहाँ तक सफल रहा है—अर्थात् इस दूसरे अवस्थान मे असफल अनुवादक अनिवार्यत. पहले मे भी असफल ही समझा जायेगा। इसी आधार पर एक सहज निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि अनुवादक को यो तो मूल और अनुवाद दोनो की ही भाषाओ में पारगत होना चाहिए, परन्तु उसके लिए मूल (स्रोत) भाषा की अपेक्षा अनुवाद की (लक्ष्य) भाषा में अच्छी गति होना अधिक आवश्यक है।

अनुवाद के इस दूसरे अवस्थान की सबसे पहली समस्या प्रक्रियापरक एव व्यावहारिक है। मूल रचना या अर्थ-बोध तो अनुवादक समग्रत ही करता है—पूर्वापर विचार अथवा भाव क्रम मे आबद्ध रचना मे सम्पूर्ण पाठ द्वारा ही वह लेखक के मन्तव्य को पूर्णत ग्रहण कर सकता है, किन्तु भाषान्तरण की प्रक्रिया में वह इकाई किसे माने ? सम्पूर्ण रचना को ? छन्द अथवा कडिका को ? या वाक्य अथवा व्यष्टि-भाव को वहन करने वाले छन्दाश या पक्ति को ? या फिर पद, शब्द को ? अनुवादक के लिए सम्प्रेषण के धरातल पर यह बहुत महत्त्वपूर्ण समस्या है।

मध्य युग मे पूर्व और पश्चिम दोनो मे यह धारणा प्रचलित रही है कि अनुवाद शब्दश होने चाहिए। यह आस्थावान् मनीषियो का दृष्टिकोण था और मूलतः उसके पीछे धर्मग्रन्थो (बाइबिल) के प्रति प्रगाढ श्रद्धा का भाव निहित था। इन पडितों का तर्क यह था कि ये धर्मग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान हैं और इनका लेखन (अथवा अनुवाद) इसी ढग से होना चाहिए कि सामान्य (श्रद्धाहीन) व्यक्ति पर दिव्य ज्ञान की गरिमा प्रकट न होने पाये। इसके अतिरिक्त उनका यह भी तर्क था कि दिव्य ज्ञान होने के नाते शब्दानुक्रम भी अपने आप मे अर्थपूर्ण और अटल होना चाहिए, कि उसमे निश्चय ही कुछ रहस्य निहित होगा और उस रहस्य की रक्षा की जानी चाहिए। हमारे यहाँ भी वेदादि ग्रन्थो के अनुवाद मे इस पद्धति का अनु-

सरण किया गया है।

किन्तु आज के अनुवादक का दृष्टिकोण यह नहीं हो सकता क्योंकि शब्दशः अनुवाद करने के प्रयास में सबसे पहला आघात अनिवार्यतः अर्थ पर होता है और बहुत बचने पर भी अनुवादक अर्थ का अनर्थ किये बिना नहीं रह सकता। सम्पूर्ण रचना या काड, अध्याय अथवा सर्ग को भी अर्थबोध के धरातल पर तो अनुवादक इकाई मान सकता है, किन्तु भाषान्तरण की प्रक्रिया में इस पद्धति का अनुसरण करके वह अधिक से अधिक छायानुवाद अथवा भावानुवाद ही कर पायेगा, किन्तु जैसा मैंने पहले कहा है, यह अनुवाद न होगा क्योंकि अनुवाद में तो भाव, भाषा-शैली अथवा पदशय्या और ध्वनि-प्रतिमान सभी को समन्वित रूप में ग्रहण करना होता है, उसमें कुछ जोड़ने या छोड़ने का अधिकार उसे नहीं होता। इस प्रक्रिया में व्यष्टि-शब्द—यहाँ तक कि पूरे के पूरे वाक्य भी—अपनी महत्ता खो बैठते हैं और उपेक्षित रह जाते हैं।

तीसरी पद्धति वाक्य (अथवा छंद) को इकाई के रूप में ग्रहण करने की है और यही सही दृष्टि है क्योंकि भाषा की इकाई अन्ततः वाक्य (और पद्यबद्ध रचना की छंद) ही होता है। वाक्य को इकाई के रूप में ग्रहण करने से स्वतः दो सुपरिणाम होते हैं एक—सुबोधता की रक्षा हो जाती है। यदि अनुवादक ने मूल रचना के वाक्य अथवा भाव-वाहिनी पंक्ति का अर्थ ग्रहण कर लिया है तो उसे उसी रूप में उसकी अभिव्यंजना करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। दूसरे—अनुवाद की भाषा की अन्तरंग प्रकृति तथा शैली की रक्षा भी अनुवादक कर सकता है। अनुवादक की इससे बड़ी असफलता और कुछ नहीं हो सकती कि वह अनुवाद-प्रक्रिया में लक्ष्य भाषा की प्रकृति, उसकी सहज वाक्य-रचना-शैली को विकृत कर दे। प्रायः अनुवादक व्यवहार में इसी धरातल पर भटकते हैं। अर्थग्रहण करने के बाद भी यह उनकी समझ में नहीं आता कि वाक्य कहाँ से आरम्भ किया जाये और उसके विभिन्न खण्डों का संयोजन करते हुए अन्त कैसे किया जाये ? गर्भित वाक्यों में इस दृष्टि से विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अनुभवी अनुवादक प्रायः सुविधानुसार लम्बे वाक्यों को तोड़कर छोटे-छोटे वाक्यों में परिवर्तित करने में सफल हो जाता है—इससे भाषा का सौन्दर्य भी निखर आता है, प्रभविष्णुता भी बनी रहती है और सुबोधता की वृद्धि हो जाती है। किन्तु वाक्यों को खण्डित करने में कहीं कहीं असावधानी से अर्थ की विकृति भी हो जाया करती है। इसके प्रति अनुवादक को सदैव सतर्क रहना पड़ता है। इस दृष्टि से छोटे-छोटे वाक्य जहाँ अनुवादक के कौशल तथा रचना की अर्थवत्ता के प्रति उसकी सजगता को परिलक्षित करते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषा पर उसके अपूर्ण अधिकार को भी प्रतिबिम्बित कर सकते हैं। इसका एक उदाहरण है हिन्दी के मूर्धन्य कथाकार प्रेमचन्द का। प्रेमचन्द ने अपना साहित्यिक जीवन उर्दू में आरम्भ किया था

और बाद में वे अपनी रचनाओं का स्वयं हिन्दी में अनुवाद करने लगे थे। उनकी भाषा-शैली के क्रमिक विकास के सूक्ष्म परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भिक कृतियों में वे प्रयत्नपूर्वक छोटे-छोटे वाक्यों की रचना करते हैं और उस वाक्य-रचना में अपनी शक्ति के प्रति उनके मन का अविश्वास परिलक्षित होता है। बाद में जैसे-जैसे भाषा की प्रकृति का उनका ज्ञान गहरा होता गया और अभ्यास बढ़ता गया वैसे वैसे वाक्य-रचना पद्धति में स्वतः एक अन्तर आता गया है—वाक्यों में पहले का शैथिल्य नहीं रहा, छोटे-बड़े वाक्यों का यथोचित सश्लेष उनकी शैली में हो गया और फिर धीरे-धीरे वे मूलतः हिन्दी में ही साहित्य-रचना करने लगे। साराश यह कि सही वाक्य-रचना —यथावसर छोटे-बड़े, सरल-गर्भित—का कौशल अनुवादक की सबसे बड़ी पूँजी है और यहाँ बड़े-बड़े अनुवादक भी जूझ जाते हैं। अकसर मूल कृति के वाक्यों की रचना-पद्धति अनुवादक को भ्रान्त दिशा में प्रेरित करती है क्योंकि वह जाने-अनजाने उसका अनुसरण करने का प्रयत्न करता है और उसीमें पटगा खा जाता है।

किन्तु अनुवाद-प्रक्रिया में वाक्य अथवा छद को इकाई के रूप में ग्रहण करने का यह तात्पर्य नहीं कि सम्पूर्ण कृति के पूर्वापर क्रम और प्रसग-विधान को अनुवादक भुला बैठे—उसे बराबर इसके प्रति सतर्क रहना चाहिए, तभी वह पूर्ण और खण्डों में एक सहज सामजस्य स्थापित करने में सफल हो सकता है। अनुवादक की सफलता का प्रमाण यह है कि उसके वाक्यों में जो शब्द अथवा पद-समष्टि जहाँ आनी चाहिए, वहीं आये—उसे वहाँ से हटाते ही वाक्य का सन्तुलन भग हो जाये, और वाक्य सम्पूर्ण कृति का सहज अग हो, उस भाषा की प्रकृति के अनुकूल हो तथा मूल के अर्थ की अभिव्यक्ति पूर्णतः करे।

वाक्य में प्रत्येक शब्द की अपनी महत्ता होती है। जिस प्रकार वाक्य सम्पूर्ण कृति का सहज अग होता है, उसी तरह वाक्य में भी प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण होता है। वाक्य-रचना से पूर्व यह आवश्यक होता है कि अनुवादक के पास मूल कृति के महत्त्वपूर्ण शब्दों के उपयुक्त पर्याय हो और जिस तरह अर्थवत्ता-बोध के लिए मूल कृति के शब्दों की आत्मा का निकट परिचय आवश्यक होता है, उसी तरह उसके सम्प्रेषण के लिए अनुवाद की भाषा के शब्दों का भी अन्तरग ज्ञान होना उसके लिए (और भी अधिक) आवश्यक है। प्रत्येक भाषा में अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिन्हें सामान्यतः हम पर्यायों के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु प्रयोग के धरातल पर अर्थों में थोड़ा-बहुत अन्तर्वर्तित्व होते हुए भी विशिष्ट अर्थच्छायाएँ उनके साथ जुड़ी रहती हैं। इन प्रयोगगत सूक्ष्म भेदों का ज्ञान ही अनुवादक को उपयुक्त शब्द-चयन में सफल बना सकता है क्योंकि शब्द की शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत प्रयोग और प्रचलन ही होता है। हमारे यहाँ हिन्दी में—तथा अन्य आधुनिक भाषाओं में भी—पर्यायों के इस प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन का अभाव है जिसके

फलस्वरूप तथाकथित पर्यायवाची शब्दों की सीमा-रेखाएँ सामान्यत स्पष्ट नहीं और उनके प्रयोग में एक प्रकार की अव्यवस्था और अराजकता है।

काव्य और शास्त्र के अनुवाद में शब्द-समस्या का स्वरूप बहुत-कुछ भिन्न हो जाता है। समृद्ध भाषा में काव्योचित भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दों का अभाव प्राय नहीं होता, फिर हमारी भाषाओं को तो संस्कृत की अत्यन्त समृद्ध शब्दावली दाय में प्राप्त है। मूल रचना में निहित भाव-तीव्रता को आत्मसात् कर कृतिकार की मन स्थिति से तादात्म्य कर लेने पर अभिव्यंजना के धरातल पर प्रतिभाशाली अनुवादक की गति कुंठित नहीं होती क्योंकि काव्य-प्रतिभा द्वारा स्वत उपयुक्त शब्दों का स्फुरण हो जाता है—यों, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, स्वय कवि में ही संवेदना भाषा के स्थूल धरातल तक आते-आते अपनी तीव्रता काफी हद तक खो चुकती है, फिर अनुवादक की तो बात ही क्या ? किन्तु शास्त्र के धरातल पर स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। शास्त्रकार न किसी प्रकार की दुविधा के लिए अवकाश छोड़ता है और न उसके अनुवादक को इस बात का अधिकार होता है कि किसी प्रकार की संदिग्धार्थक शब्दावली को प्रश्रय दे। इसीलिए शास्त्रीय शब्दावली का सबसे पहला नियम यह है कि उसमें एक शब्द का एक ही मूल अर्थ होना चाहिए। यह परस्पर अपवर्जिता (mutual exclusiveness) वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली के लिए अनिवार्य है। किन्तु काव्य-भाषा में जहाँ एक प्रकार की सार्वभौमता होती है, वहीं विज्ञान की प्राय प्रत्येक शाखा की अपनी विशिष्ट शब्दावली होती है। हमारे यहाँ विविध विज्ञानों की उपयुक्त शब्दावली का सर्वथा अभाव है। इसमें भाषाओं का दोष नहीं। वैज्ञानिक धरातल पर हम इतने पिछड़े हुए हैं, तब वैज्ञानिक शब्दावली की दरिद्रता भी उसका सहज परिणाम है। उपयुक्त शब्दावली का अभाव अनुवादक के लिए प्रतिपग पर बाधा उपस्थित करता है। विज्ञान के चरण निरन्तर गतिशील हैं—उनके समानान्तर अग्रसर होने के लिए हमारी भाषाओं को नित्य नये शब्दों की आवश्यकता पड़ेगी।

सक्षेप में, यह आवश्यक है कि अनुवाद की भाषा में मूल की अभिव्यंजना-सामर्थ्य के समकक्ष ही अभिव्यंजना की क्षमता हो, अन्यथा वह अनुवादक की सीमा न होकर उसकी भाषा की सीमा होगी और उसके लिए अनुवादक को दोष देना अन्याय होगा।

अर्थवत्ता-बोध एवं सम्प्रेषण के अवस्थानों को एक समन्वित क्रिया के रूप में लें तो अनुवादक के प्रयत्न के सम्बन्ध में एक मौलिक प्रश्न पूछा जा सकता है—उसने मूल के प्रति ईमानदारी बरती है ? या उसने यथोचित स्वतन्त्रता भी ली है ? इस प्रश्न की आवश्यकता इसलिए है कि कहीं-कहीं मूल कृति के प्रति आत्यतिक ईमानदारी वास्तव में निष्ठाहीनता का रूप ग्रहण कर लेती है क्योंकि प्रत्येक

भाषा मे कुछ ऐसी अनन्य-सामान्य विशेषताएँ एव सूक्ष्मताएँ होती हैं जो अनुवाद की आँच को नही झेल पातीं और उसका परिणाम होता है अनिवार्य विकृति। दूसरी ओर, यदि अनुवादक मूल के प्रति ईमानदार नहीं रहा तो कोई भी अनुवाद अनुवाद कहलाने का अधिकारी नही। यहाँ विविध तत्त्वों की प्राथमिकता स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए—अनुवाद की सर्वप्रथम निष्ठा मूल कृति के अन्तस्तत्त्व के प्रति ही होनी चाहिए, उसका साध्य उसी का सम्प्रेषण करना है और अपने इस साध्य की सिद्धि के लिए उसे यदि साधन-रूप भाषा के कुछ तत्त्वो की उपेक्षा भी करनी पड़े तो इस हद तक स्वतन्त्रता ले लेने का अधिकार उसे है। महत्तर तत्त्व की साधना मे यदि हीनतर तत्त्व की उपेक्षा अनिवार्य हो जाये तो इसके अति-रिक्त और विकल्प ही क्या हो सकता है। पर अनुवादक का प्रयत्न यही होना चाहिए कि दोनो के बीच अधिकाधिक सामजस्य स्थापित हो सके।

मैंने आरम्भ में जो तीन प्रश्न उठाये थे, उनमें से तीसरे प्रश्न का भी महत्त्व कम नहीं—अर्थात् अनुवाद किसके प्रति उद्दिष्ट है ? हिन्दी के सन्दर्भ मे तो आज इसकी और भी अधिक महत्ता है। राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होकर जहाँ हिन्दी की गौरव-वृद्धि हुई है, वही नयी समस्याएँ भी कुछ कम पैदा नही हुई। राष्ट्रभाषा होकर हिन्दी सामान्य सम्पत्ति बन गयी है जिसके सम्बन्ध मे अपना-अपना मत व्यक्त करने का सभी को अधिकार मिल गया है। सामान्य सम्पत्ति के प्रति प्राय सभी का मोह घट जाता है—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। हिन्दी का भी यही दुर्भाग्य है। हर प्रदेश का व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से उसके स्वरूप को आँकता है। सबका नारा एक ही होता है—'सरल भाषा'—किन्तु अर्थ और मन्तव्य परस्पर-विरोधी और भिन्न होते हैं। 'सरल' विशेषण से उत्तर-भारतीय का अर्थ सामान्यत यह होता है कि उसमें अरबी फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग अधिकाधिक किया जाना चाहिए। दक्षिण भारतीय के लिए 'सरल' प्राय सस्कृतनिष्ठता का द्योतन करता है। एक वर्ग ऐसे शिक्षित लोगो का भी है जिनका अभिप्राय 'सरल' कहने से हिन्दी को अँग्रेजी के अधिका-धिक निकट ले जाने का होता है। अत भाषा के इस सक्रान्ति-काल मे इस प्रश्न की महत्ता और भी बढ गई है। भाषिक दृष्टि से हमारे वर्तमान समाज की कुछ अलग ही विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। स्पष्ट है, अनुवाद शिक्षित वर्ग के लिए ही किये जायेंगे, चाहे 'जनता' के नाम पर भाषा के साथ कैसी ही मनमानी कोई करता रहे। आज का अधिकतर साहित्य नगर के अधीत पाठक के प्रति ही निवे-दित होता है। अनुवाद के पाठक भी ये ही होगे और दुर्भाग्यवश इस वर्ग मे इतना असीम वैविध्य और स्तर के इतने अधिक भेद हैं कि इनके कठ से एक स्वर निकलना असम्भव है! इतना ही नही, इस वर्ग की अपनी कोई भाषा भी नही। अँग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पजाबी अथवा बँगला या तमिल आदि भाषाओ के

यादृच्छिक मिश्रण से जिस सकर भाषा का निर्माण इस वर्ग के सदस्य कर लेते हैं, उसे लिखने की 'धृष्टता' कोई अनुवादक नहीं कर सकता। हिन्दी भाषा का कोई ऐसा परिनिष्ठित रूप नहीं हो सकता जो इस वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर सके और न यह वर्ग उसके किसी रूप को सहज मानकर स्वीकार ही कर सकता है। इस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अपने पूर्वाग्रह होते हैं और वह उन्ही के अनुकूल भाषा को ढला हुआ देखना चाहता है। अत भाषा का कोई भी स्वरूप अनुवादक स्थिर कर ले, उसका विरोध होना अनिवार्य है। इस प्रकार हिन्दी मे आज अनुवादक के भाग्य मे केवल कुछ अपशब्दो के पुरस्कार का ही योग है।

अपशब्दो की यह वर्षा तो आनुषगिक है—यो अनुवादक जाने-अनजाने आरम्भ से ही एक हीनता-ग्रथि का शिकार होता है। एक कठिन कार्य मे प्रवृत्त होने पर भी उसे आरम्भ से ही यह अप्रीतिकर बोध रहता है कि उसके प्रयत्न का अधिकाश श्रेय मूल कृतिकार को ही मिलेगा, कि वह कभी मूल लेखक के समकक्ष यश-लाभ की आशा नहीं कर सकता।

अन्त में अनुवाद की सफलता की सबसे बडी कसौटी यह है कि वह अनुवाद न लगे बल्कि मौलिक कृति की आभा से मडित हो, एक ताजगी लिये हुए हो। दूसरे शब्दो मे अनुवाद ऐसा होना चाहिए कि वह अपने पैरो पर खडा हो सके। गोगोल के अनुसार आदर्श अनुवादक उस बेदाग कांच की तरह होता है जिसके पार दर्शक हर चीज़ को साफ-साफ, ज्यो का त्यों, देख सके और इसके साथ ही उसके अस्तित्व से भी अनभिज्ञ रहे।

('भाषा' से साभार)

महेन्द्र चतुर्वेदी

काव्यानुवाद : एक विशिष्ट मनोभूमि की अभीष्टता

काव्यानुवाद के सम्बन्ध मे—और सामान्यत अनुवाद के सम्बन्ध मे—अनेक साहित्य-मनीषियो और साहित्य-स्रष्टाओ ने अनेक मत व्यक्त किये हैं और देश-विदेश के इन मनीषियो और स्रष्टाओ के मत अधिकतर अनुवाद कार्य तथा अनुवादक के प्रतिकूल हैं। किसी ने कहा कि अनुवाद-कर्म ऐसे ही है जैसे कोई फूल को खडिया मे पीसकर उसकी सुगन्ध और सौन्दर्य के आधारभूत तत्वो का अन्वेषण करे, तो किसी और ने कहा कि काव्यानुवाद का प्रयास ऐसा बचकाना प्रयास होता है जैसे सूर्य रश्मियो को तृणो के घेरे मे बाँधने का, किसी ने कहा कि जो कृति कलादेवी के स्पर्श से पूर्णता और एकलयता प्राप्त करे उसके अनुवाद का प्रयत्न 'मूर्खतापूर्ण' होता है तो किसी ने बिना लाग-लपेट और बिना घुमाव-फिराव के सीधे ही अनुवादक को 'प्रवचक' की सज्ञा दे डाली! किसी ने अनुवादक के पक्ष मे कभी कुछ कहा ही न हो—ऐसी बात नही, परन्तु अनुकूल वक्तव्य जो थोडे-बहुत हैं भी वे प्रशस्तिपरक कतई नही, अधिक-से-अधिक उसे 'समझौता' कहने का ही साहस अनुवाद के पृष्ठपोषक कर पाये हैं।

इस सबका क्या कारण है? इसमे तो सन्देह नही कि अनुवाद एक व्यावहारिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं और करते रहे हैं। जबसे विश्व में एक से अधिक भाषाएँ अस्तित्व मे आयी तभी से मनुष्य, एक-दूसरे को जानने-समझने की अपनी अदम्य आकाक्षा के वशीभूत होकर, घोषित-अघोषित रूप मे अनुवाद की आवश्यकता का अनुभव करने लगा होगा। यथार्थ और वास्तविक आवश्यकता के पूरक कर्म के प्रति ऐसा कडा रुख 'आदर्शनिष्ठता' की प्रेरणा का ही फल हो सकता है। सच यह है कि काव्यानुवाद अत्यन्त कठिन और दुःसाध्य कर्म है और चूँकि उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न कर पाने की क्षमता अत्यन्त विरल है, अत

अनधिकारियों तथा क्षमताविहीनो को इस दिशा से विमुख रखने के लिए ही मनी-षियो तथा स्रष्टाओ ने इतना अनम्य रुख अपनाया होगा।

अनुवाद के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए हम प्राय उसे 'पुन सृजन' कहकर अभिहित करते हैं। यह 'पुन सृजन' शब्द जितना सार्थक काव्यानुवाद के सन्दर्भ मे है उतना सार्थक शायद किसी भी और विधा के अनुवाद के सन्दर्भ में नही। सृजन मे सहजता, स्वच्छन्दता निहित है, 'पुन सृजन' के लिए प्रशिक्षण, अनुशासन, की अनिवार्यता निर्विवाद है। हमारे सामने एक वस्तु-रूप-समन्वित कृतित्व विद्यमान होता है और वह अनिवार्यत हमारे लिए एक परिधि, एक घेरा, बाँध देता है एव लक्ष्मण-रेखा के भीतर कृतिकार तथा कृतित्व के प्रति अपनी निष्ठाओ को सहेजे-सँवारे बिना काव्यानुवाद के कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो जाने की पूरी सम्भावनाएँ होती हैं। 'पुन सृजन' का कर्त्तव्य सीमाबद्धता का वाचक है।

'सृजन' (अथवा सृष्टि) के शब्दों की स्थूल डोर काव्यानुवादक को उस अदृश्य सूक्ष्म प्रक्रिया से जोडती है जो सृजन के क्षणो मे स्रष्टा मानस मे घटित हुई होगी। *शेली ने कहीं कहा है कि आज तक कोई कवि ससार में ऐसा नहीं हुआ जो* अपने सृजन क्षणो के भावावेग की तीव्रता को ज्यो-का-त्यो शब्दो मे उतार पाया हो। वास्तव मे भावदीप्त क्षणो के आवेग की तीव्रता सहारने मे शब्द सर्वथा अपर्याप्त और असफल होता है। इसीलिए कहा गया है कि कविता मे जितना 'व्यक्त' होता है उससे अधिक 'अव्यक्त' रह जाता है। इस अव्यक्त तत्त्व की पकड के लिए यह आवश्यक होता है कि अनुवादक कवि-मानस की सृजन-प्रक्रियाओ से अपना तादात्म्य कर सके, उन प्रक्रियाओ का अपने मानस मे यथावत् पुनर्निर्माण कर सके। इस सूक्ष्मस्तरीय मानसैक्य, पूर्ण तादात्म्य, के बिना सफल काव्यानुवाद असम्भव होता है।

टाल्सटाय ने सुप्रसिद्ध निबन्ध 'कला क्या है?' मे सच्ची कलाकृति के लिए तीन आवश्यक गुणो का उल्लेख किया है एक तो यह कि उसमे कुछ नया विचार हो, कि उसका वस्तु-तत्त्व मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण हो, दूसरे, वह वस्तु तत्त्व इतनी स्पष्टता के साथ व्यक्त किया गया हो कि हर मनुष्य उसे समझ सके, और तीसरे, रचनाकार को अपनी रचना मे प्रवृत्त करने वाला प्रेरक तत्त्व कोई बहि-रग प्रयोजन न होकर आतरिक आवश्यकता होनी चाहिए। और अन्त में उन्होने इस 'आतरिक आवश्यकता' वाले तत्त्व पर, कलाकार की ईमानदारी और निष्ठा-वत्ता पर, सबस अधिक बल दिया है और एक प्रकार से यह प्रतिपादित किया है कि 'ईमानदारी' मे स्वत अन्य दोनो तत्त्वो का समाहार और समावेश हो जाता है। यदि 'पुन सृजन'—काव्यानुवाद—भी कला है तो मैं समझता हूँ उसके साधक मे यह 'ईमानदारी' का तत्त्व सबसे अधिक अपेक्षित होता है।

'ईमानदारी' का व्यावहारिक अर्थ यह है कि काव्यानुवादक को जिस-तिस

कृति के अनुवाद मे नही जुट पडना चाहिए—जो कृति उसे वास्तविक प्रेरणा दे और उसके मन मे अनुभूति-साम्य जगाकर ज्वार पैदा कर दे, उसी के अनुवाद मे उसे प्रवृत्त होना चाहिए। जो कृति उसके भीतर यह स्पन्दन उत्पन्न न करे वह चाहे कितनी ही प्रतिष्ठित क्यों न हो और उसका रचयिता चाहे कितना ही बड़ा क्यो न हो, उसका भरसक रसास्वाद करके भी उसे अनुवाद के प्रयत्न से दूर रहना चाहिए। हर अनुवादक की अपनी विशिष्ट मनोरचना होती है—जैसे हर कवि-लेखक की होती है, और जैसे हर कवि-लेखक हर विषय-वस्तु को अपनाकर साहित्य-सर्जना नहीं कर सकता वैसे ही हर अनुवादक हर प्रकार के काव्य का अनुवाद नही कर सकता।

अनुवाद के लिए—विशेषत. काव्यानुवाद के लिए—एक अनिवार्य पूर्व-आवश्यकता होती है और वह आवश्यकता है एक विशेष प्रकार की मनोभूमि की उपलब्धि। जब तक काव्यानुवादक अपने आप को इस मनोभूमि पर स्थित न कर पाये, उसे काव्यानुवाद की जोखिम नही उठानी चाहिए। 'जोखिम' यह इसलिए है कि जैसे असफल कवि अपने आप को अभिव्यक्त न कर पाकर छटपटाहट का अनुभव करता है वैसी ही विकल वेदना असफल, किन्तु अनुभूति-प्रवण, काव्यानुवादक के मन मे न जगे—यह सम्भव नही। काव्यानुवादक को इस अभीष्ट मनोभूमि के दो पक्ष होते हैं—एक भावात्मक और दूसरा अभावात्मक। भावात्मक पक्ष की सिद्धि का तात्पर्य यह है कि, जैसा हमने ऊपर भी कहा है, उसे अपनी सवेदना का द्विविध प्रसार करना होता है—कृतिकार के प्रति, कृति के प्रति। इस सवेदना-प्रसार के बिना वह यदि अपने कार्य मे प्रवृत्त होता है तो वह अनधिकार चेष्टा ही कही जायेगी। किन्तु, अभावात्मक पक्ष अपेक्षाकृत अधिक दु साध्य होता है। अभावात्मक पक्ष की सिद्धि का तात्पर्य यह है कि अनुवादक अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण तिरोभाव करके अपना पूर्ण तादात्म्य कृतिकार और उसके कृतित्व के साथ कर ले—दूसरे शब्दो मे, वह अपने भावो अनुभावो, अपने राग-विराग, अपनी आशा-आकाक्षाओ, अपने विचारो के घेरे से उस क्षण के लिए ऊपर उठ जाये, इन सब सीमाओ से अतीत हो जाये, क्योकि अगर वह ऐसा नही कर पाता तो कही-न-कही किसी न-किसी प्रसग मे, वह अवश्य ही कृतिकार और कृति पर अपना आरोप किये बिना नही रहेगा और वहीं वह साधना भ्रष्ट हो जायेगा। सक्षेप मे, यह मनोभूमि एकान्त निर्वैयक्तिकता की मनोभूमि होती है और इसके लिए बडे कठोर अनुशासन की, सयम की, अपेक्षा है। इस भावभूमि पर अपने आप को प्रतिष्ठित किये बिना काव्यानुवाद किया नही जा सकता और अगर किया जाता है तो वह अपूर्ण साधना फलदायी कभी नही हो सकती।

इसमे सन्देह नही कि 'काव्यानुवाद' बडे जोखिम का काम है, इसके लिए कठोर मानसिक अनुशासन अपेक्षित होता है, अनुवादक को अपनी अनुभूतिगत

एव भाषागत सीमाओ के प्रति पूर्ण जागरूक रहकर उसमे प्रवृत्त होना चाहिए परन्तु, यह सब कहने के बाद हम यह भी कहे बिना नही रहेगे कि जो भगीरथ सच्चे मन से भाव-गगा को एक (भाषा) लोक से दूसरे भाषा-लोक मे ले जाकर उसके (रमज्ञ) प्राणियों को अमृत-रस से परिप्लावित करने की साधना करता है, वह यदि आंशिक सफलता भी पा जाये, अथवा सर्वथा असफल भी हो जाये, तो भी उसकी साधना की गरिमा किसी तरह कम नही होती, उसे 'प्रवचक' कहना सर्वथा अन्याय है। महान् अनुष्ठान की असफलता भी अपनी गरिमा लिये रहती है, प्रेरणा शुभ हो तो साधना की महत्ता पर अविश्वास नही किया जा सकता, जो 'मरजीवा' (भाव-) मणि के अन्वेषण के निमित्त सागर की अतल गहराइयो मे पैठता है, उसका प्रयत्न भी हमारी प्रशसा के योग्य होता है। 'काम नही परिणाम निरखने' की वृत्ति रस के साधक को, साहित्य मर्मज्ञ को, शोभा नही देती।

अजितकुमार

अनुवाद—कविता का अनुवाद

हिन्दी मे छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बाद, अब जिस अनुवाद ने ज़ोर पकडा है, उसके उद्भव और विकास का लेखा-जोखा न देकर, यहाँ उससे सम्बद्ध कुछ समस्याओ की ओर ध्यान आकृष्ट करना उचित रहेगा।

अनुवाद की सबसे बडी समस्या तो यह है कि उसे करना पडता है। कविता को लिखने मे आप कतराते रह सकते हैं— चाहे इसी बहाने कि आप उसे जी रहे हैं, लेख लिखने या कम-से-कम उसे पूरा करने से भी आप बच सकते हैं—चाहे इसी बहाने कि सामग्री नही मिल पा रही है, पर अनुवाद से कोई मुक्ति नही मिलती क्योंकि जहाँ ढेरों पहरेदार हो, वहाँ से चाहे आप एक बार छूट भी निकलें, लेकिन जहाँ केवल दो—कोश ग्रथ और मूल-ग्रथ—और कभी-कभी सिर्फ एक—मूल-ग्रथ—हो वहाँ से आप कहाँ भागेंगे! अत अनुवाद को निपटाना ही पडता है, भले ही इस-लिए कि वह अकसर 'हैक-वर्क' या महज रोज़ी-रोटी कमाने का धन्धा होता है। और यह बात सरकारी दफ्तरों के हिन्दी विभागों, आकाशवाणी के हिन्दी समा-चार-एकांशो, दैनिक-साप्ताहिक हिन्दी पत्रों के सम्पादक-मडलो से लेकर अगणित, या चाहे तो कह लें सभी, हिन्दी लेखको पर लागू होती है, जिन्हें अनुवाद को आज एक ज़रूरत—एक नैसेसिटी—के तौर पर करना पडता है। और जब यह कहा जाये कि हिन्दी के अधिकाश पेशेवर लेखक क्रमश पेशेवर अनुवादक भी बनते जा रहे हैं तो जिस अनुपात मे 'अनुवाद' लेखक-समाज के लिए एक बडी सुविधा या साधन प्रतीत होने लगता है, उसी या उससे भी अधिक अनुपात मे एक समस्या बन जाता है। सक्षेप मे, यो कह सकते हैं कि इधर अनुवाद लेखक पर हावी होता जा रहा है और यह बात केवल सृजनात्मक साहित्य, उसके उद्देश्य और प्रकृति पर ही नही, लेखन शैली, चिन्तन-पद्धति, शब्दावली, वाक्य-विन्यास आदि पर लागू होती है।

यो तो कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण मानव-जीवन ही अनुवादमय होता है

क्योकि हमारा व्यवहार वास्तव मे हमारे भावो-विचारो को अपने शब्दो तथा कार्यों मे अनूदित करने की एक चेष्टा मात्र है और जिस तरह हम इस जीवनगत अनुवाद मे सफल-असफल होते हैं उसी तरह भाषागत अनुवाद मे भी हो सकते हैं। तथापि आज के हिन्दी-जगत पर अनुवाद की आतंकपूर्ण छाया कही प्रेत-छाया न बन जाये, इसका ध्यान रखना होगा। हमे अपनी भाषा को इस खतरे से बचाना होगा कि कही उसका रचनात्मक स्वरूप गौण होकर, मात्र अनुवादात्मक न हो जाये, अर्थात् यान्त्रिक स्वरूप ही प्रमुख न हो जाये।

यह समस्या उस समय और भी गम्भीर हो उठती है, जब हम देखते हैं कि अनुवाद-कार्य मे विदेशी सरकारें बेहद दिलचस्पी लेने लगी हैं। उनका साहित्य—प्रचारात्मक तथा अन्य प्रकार का उपयोगी साहित्य—बहुत बडी सख्या मे अनूदित होकर भारतीय भाषाओ, विशेष रूप से हिन्दी, के माध्यम से सम्मुख आ रहा है। इस कार्य के महत्त्व और उपयोग की उपेक्षा नही की जा सकती, लेकिन जितने अशो मे यह सत्ता की राजनीति और शीत-युद्ध का एक हथियार बनकर हमारे बीच प्रतिफलित हो रहा है, उतने अशो मे चिन्तनीय है। अपने इस रूप मे वह न केवल हमारे लेखन के स्वर और स्तर को, बल्कि अनुवाद के स्वर और स्तर को भी, 'डिमॉरलाइज' करता है—उसे निकम्मा बनाता है। भारतीय जीवन मे विदेशी सरकारो और विदेशीपन के बढते हुए प्रभाव की एक झलक यहाँ—इस क्षेत्र मे—भी देखी जा सकती है।

देशी स्तर पर इस समस्या के जो अनेक पहलू उभरकर सामने आये, उनमें से एक की ओर सकेत करना आवश्यक है। हम जानते हैं कि आजादी के बाद अनुवाद-कार्य पर इतना अधिक बल दिये जाने का प्रमुख कारण यह था कि हिन्दी को राजभाषा ही नही, राष्ट्रभाषा का महत्त्वपूर्ण पद सच्चे अर्थों मे ग्रहण करना था और यह तभी सम्भव था जब देश-विदेश के मौलिक रचनात्मक साहित्य को ही नही, ज्ञान-विज्ञान के साहित्य को भी हिन्दी में प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध करा दिया जाता। सभी क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषाओ की तरह, एक लम्बे अरसे तक हिन्दी का सबसे सशक्त अग उसका अपना रचनात्मक साहित्य रहा—विशेषकर उसकी कविता। किन्तु राष्ट्रभाषा के गौरव को वहन करने के लिए उसे सर्वांग-पूर्ण बनना ही था। फलत अनुवाद-कार्य मे वृद्धि हुई और इसी से सम्बद्ध एक समस्या—वैज्ञानिक विषयो के लिए तकनीकी शब्दावली के निर्माण की समस्या—हमारे सम्मुख आयी। इस समस्या ने कुछ ही वर्षों मे विकराल रूप धारण कर लिया, क्योकि एक तो उक्त विषयो से सम्बद्ध शब्दावली के निर्माण मे सरकारी तौर पर बहुत विलम्ब हुआ, दूसरे केन्द्रीय एव राज्य सरकारो के बीच, सरकार और प्रकाशको के बीच, तथा प्रकाशको और लेखको-अनुवादको के बीच किसी भी तरह का सयोजन स्थापित न हो सका। नतीजा यह हुआ कि शीघ्र ही एक तर-

नीकी शब्द के अनेक पर्याय हिन्दी मे प्रचलित हो गये और किसी सुनियोजित नीति अथवा व्यवस्था के अभाव मे तथा केन्द्रीय स्तर पर शब्दावली के निर्माण मे या उसको आत्यन्तिक रूप दिये जाने मे देरी होते रहने के फलस्वरूप, परिस्थिति जटिल बन गयी। विभिन्न हिन्दी-भाषी राज्यो मे भिन्न भिन्न शब्दावली प्रयुक्त होने लगी और विद्यार्थियो, अध्यापकों, पाठ्य-पुस्तकों, कार्यालयो, समाचार-पत्रो आदि ने क्रमश वैज्ञानिक विषयो के लिए ही नही, सामान्य विषयो के लिए भी अपनी-अपनी निजी पारिभाषिक शब्दावली का इस्तेमाल शुरू कर दिया। आज हम यदि मान भी लें कि कालान्तर मे सभी सामान्य और तकनीकी विषयों के लिए आत्यन्तिक और 'स्टैंडर्ड' शब्दावली निर्धारित कर दी जायेगी, तो भी यह समस्या बनी रहेगी कि जो सरकारें, सस्थाएँ या व्यक्ति पिछले लगभग बीस वर्षों से एक भिन्न शब्दावली का प्रयोग करते आ रहे हैं, वे उसे छोडकर नयी शब्दावली कैसे अपनायें ? कभी-न कभी ऐसा करना जरूर पडेगा, लेकिन इस प्रक्रिया में कितना अधिक मानव-प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होगा ! पुस्तको के पुराने सस्करणो की जगह नवीन शब्दावलीयुक्त सस्करण अवश्य छापे जा सकेंगे—यो कि यह भी अपने आप में एक दुस्साध्य कार्य होगा—पर तब तक अतिप्रचलित हो गये शब्दो के स्थान पर नयी शब्दावली को आत्मसात् करना विद्यार्थियो, अध्यापको, कर्मचारियो अथवा सामान्य जन को अत्यन्त कठिन प्रतीत होगा।

सूचनात्मक, प्रचारात्मक और तकनीकी साहित्य के अनुवाद से जुडी समस्याओं की इस सक्षिप्त चर्चा के बाद विशुद्ध या ललित साहित्य के अनुवाद की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है—बाद में इसलिए क्योकि अनुवाद के मामले मे हिन्दी मे आजादी के बाद से पहला और प्रमुख ध्यान तकनीकी तथा सूचनात्मक साहित्य म अनुवाद पर ही दिया जाता रहा है। विशुद्ध साहित्यिक अनुवाद की प्रेरणा पर भी आजादी के बाद व्यावसायिकता का गहरा रग चढ गया। उसमे स्वेच्छा का वह भाग कम हो गया, जो अनुवाद का बुनियादी आदर्श होना चाहिए। अन्य भाषा की श्रेष्ठ रचना को पढ़ने से प्राप्त हुए आनद को अपनी भाषा के पाठको तक पहुँचाने के सात्विक प्रयत्न मे भले ही उपयोगिता की थोडी-बहुत भावना रहती हो, पर आज की व्यावसायिकता से वह बहुत भिन्न थी। बहरहाल, कहने की आवश्यकता नही कि अनुवाद की जटिलताएँ और कठिनाइयाँ अपन प्रबलतम रूप में विशुद्ध साहित्य का–विशेषकर ललित गद्य और कविता का–अनुवाद करते समय ही सम्मुख आती हैं। इन जटिलताओं को सुलझाने का कोई सर्वसम्मत उपाय नहीं हो सकता, क्योकि अनुवाद के मामले मे उतनी ही रायें होती हैं, जितने कि अनुवादक। कोई भी दो अनुवादक ऐसे न होंगे जो किसी कृति का बिलकुल एक-सा अनुवाद करें। एक मूल रचना के दो या अधिक भिन्न अनुवादों को देखकर हम अनुवाद की प्रक्रिया को ही नही, स्वय अनुवादक की मानसिक प्रक्रिया को भी समझ सकते हैं। अनुवादक

की मानसिक प्रक्रिया का प्रारम्भिक बिन्दु एकाधिक भाषाओं की उसकी जानकारी है। भिन्न-भिन्न भाषाओं की अभिव्यक्तियों—शब्दों, वाक्यों और ध्वनियों—को समझना और उन्हें एक भाषा से दूसरी मे ढालना ही, मोटे तौर पर, अनुवाद-कार्य है। सुनने मे भले ही यह उतना दुष्कर न जान पड़े, लेकिन सच पूछा जाये तो अपने चरम रूप मे यह एक तरह का असम्भव कार्य है, पर इसी कारण यह उन लोगो को आकर्षित और उत्साहित भी करता रहा है जिनकी दिलचस्पी अपनी भाषा के अलावा अन्य भाषाओं में रही है और जो भाषाओं को एक दूसरे के सन्दर्भ मे रखकर उनकी गूँजें सुनना-समझना चाहते रहे हैं।

हम नही जानते कि ससार के पशु-पक्षी और कीडे-मकोडे एक-दूसरे की बातो को कैसे समझते हैं? शायद सहज-बोध द्वारा समझते होंगे। उनके अनुभव और उनकी अभिव्यक्ति का समूचा तत्र मनुष्य अभी तक नही जान सका है, लेकिन अपने लिए अवश्य मनुष्य ने काफी पहले से अभिव्यक्ति का एक साधन बना लिया था। वह था—भाषा का साधन। इस मामले मे मनुष्य पशु-पक्षियो से भिन्न और शायद बेहतर भी है, लेकिन मनुष्य-जाति के सामने, अलग-अलग क्षेत्रो मे अलग-अलग भाषाएँ विकसित होते जाने के साथ-साथ एक समस्या भी खड़ी हो गयी कि एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषी की बात क्योंकर समझे? कदाचित् यह कठिनाई पशु पक्षियो को अनुभव न करनी पडती होगी। पर उनके सीमित भाव-यत्र की अपेक्षा कही अधिक विकसित और जटिल भाव-यत्र से सम्पन्न जिस मनुष्य-जाति ने अपने को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने का उपाय खोज निकाला था और इस उपाय के माध्यम से अपने-आप को सामाजिकता के सम्बन्ध-सूत्र मे पिरो लिया था, उसने यह पहचानने मे कदापि भूल नही की कि मनुष्य जाति सारे ससार मे सर्वत्र एक है। भाषा का आविष्कार भले ही प्रारम्भ मे एक समाज और दूसरे समाज के बीच दीवार बनकर खड़ा हो गया हो, किन्तु भाषा का साधन जितना ही विकसित होता गया, उतना ही लोग इस तथ्य से परिचित होते गये कि क्षेत्रीय दूरियो और वर्ग, धर्म आचार-व्यवहार आदि के ऊपरी भेदो के बावजूद मनुष्य सर्वत्र एक ही हैं, उसकी जाति एक ही है और उसके सोचने विचारने के ढंग मे सब जगह एक मूलभूत एकता या समानता विद्यमान है। अत विभिन्न सस्कारो के पीछे स्थित एकरूप मानव को पहचानना बहुत अशो मे भाषागत अनुवाद के ज़रिए मुमकिन हुआ है। अनुवाद की बहुत बडी उपयोगिता यह रही है कि उसने मनुष्य के सामान्य जीवन की अभिव्यक्तियों का परिचय पाने मे विभिन्न भाषा-भाषियों को मदद दी है। पेड, पानी, सिर-दर्द, भूख, जैसे सामान्य कथन आसानी के साथ और लगभग ठीक ठीक एक भाषा से दूसरी भाषा मे रूपान्तिरत किये जा सकते हैं। सामान्य वस्तुओं और सीधे-सादे विचारो के लिए प्रत्येक भाषा मे शब्द होते हैं और उनके रूपान्तरण मे बहुधा कठिनाई नही होती। लेकिन जैसा

हम जानते हैं, अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के विकास की ही भाँति, अलग-अलग भाषाओं के विकास की स्थितियाँ भिन्न होती हैं। किन्हीं भाषाओं का शब्द-भण्डार सीमित होता है, और किन्हीं का विस्तृत। कुछ भाषाएँ अधिक समर्थ होती हैं और कुछ उतनी नहीं होतीं। यही कारण है कि संसार की समस्त भाषाओं को हम एक सा विकसित नहीं पाते। फलत: कितने ही जटिल विचार या सूक्ष्म संवेदनाएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें संसार की प्रत्येक भाषा में ठीक एक जैसा व्यक्त नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि किसी विकसित भाषा की मूल रचना का बहुत अच्छा अनुवाद किसी अविकसित भाषा में कर पाना कठिन होता है। ऐसा भी नहीं कि प्रत्येक भाषा में दूसरी भाषा के प्रत्येक शब्द के लिए उचित शब्द मिल ही जाये। समानार्थक शब्द प्राय मिल सकते हैं, पर ये बहुत बार उपयुक्त शब्द नहीं होते। यहाँ तक कि एक ही मूल भाषा अथवा भाषा-समूह की भिन्न-भिन्न भाषाओं में ऐसे शब्द मिल सकते हैं, जिनका उद्गम तो एक ही हो, पर जो अपनी भाषा में प्रयुक्त होते-होते अपना किंचित् भिन्न अर्थ ग्रहण कर चुके हों। उदाहरण के लिए, भारतीय भाषा-समूह के मातृ, मादर, मेटर, मम्मी, मॉम, मदर, माता, माँ, मय्या, माई, अम्मा आदि शब्दों का मूल एक ही है और उनका अर्थ भी एक ही है, लेकिन अर्थ की ध्वनियाँ थोड़ी-बहुत भिन्न हैं। अर्थ की यही भिन्न ध्वनियाँ या रंगतें अनुवाद की कठिनाइयाँ बढ़ा देती हैं। अभिधात्मक प्रयोगों के अनुवाद की कठिनाइयाँ उस समय और भी जटिल हो जाती हैं, जब हम लाक्षणिक और व्यंजनात्मक प्रयोगों तथा कहावतों और मुहावरों का अनुवाद करने चलते हैं।

भाषाओं के गठन, शब्द-भंडार और विकास से संबद्ध उपर्युक्त समस्याओं को यदि किसी तरह हल कर भी लिया जाये—गो कि वह आसानी से संभव नहीं—तो अनुवादक के सामने यह समस्या उठ खड़ी होती है कि अनुवाद करते समय उसका दृष्टिकोण क्या हो? क्या अनुवादक कृति के मूल भाव को ग्रहण करने का प्रयत्न करे या उस छाया को, जो कृति पढ़ते समय उसके मन पर पड़ी थी? अनुवाद की इस समस्या को ध्यान में रखकर कदाचित् यह उक्ति प्रचलित कर दी गयी होगी कि 'अनुवाद उस बीवी की तरह होता है जो अगर वफादार है तो खूबसूरत नहीं हो सकती, और अगर खूबसूरत है तो वफादार नहीं हो सकती।' यहाँ तक कि दुनिया भर के अनुवादकों के आदर्श एडवर्ड फिट्जेरल्ड की 'रुबाइयात ऑफ उमरखैयाम' के भी विषय में लोगों की धारणा यही है कि 'रुबाइयात' जितनी खूबसूरत हैं, उतनी वफादार नहीं।

साहित्यिक कृतियों के अनुवाद की एक बहुत बड़ी समस्या यह भी है कि मूल कृति के अर्थ के अनेकानेक स्तरों में से केवल एक या दो अर्थों को ही अनुवाद में उतारा जा सकता है। शेक्सपियर और तुलसीदास जैसे लेखकों की एक-एक पंक्ति

को लेकर जो व्याख्याएँ हुई हैं और उनके जो अर्थ खोजे गये हैं, उन सबको अनुवाद मे ला पाना प्राय असभव है। दूसरी समस्या पुरानी कृतियो के नवीन अनुवादों की भी है। क्या इन अनुवादो मे मूल कृतियो के परिवेश और ससार को अक्षुण्ण रखा जाये, या उन्हें नवीन युग के बदले हुए परिवेश मे फिर से व्याख्यायित किया जाये ? एक ही कृति के अनेक अनुवाद यह सिद्ध करते हैं कि अनुवाद की प्रक्रिया एक निरतर चलती रहनेवाली प्रक्रिया है। कृति अपने अन्तिम रूप में सदा पूर्ण होती है, पर उसका अनुवाद न तो कभी 'अतिम' अनुवाद हो सकता है, न 'पूर्ण' अनुवाद ही।

ऐसा भी नही कि अनुवाद का अर्थ सब लोग एक-सा ही समझते हो। अनुवाद कभी टीका का रूप धारण करता है, कभी व्याख्या का। कभी वह रूपातरण होता है, कभी भाषातरण। कभी वह ध्वनित होता है तो कभी प्रतिध्वनित। पर इन सभी रूपो मे, न्यूनाधिक वह दो मे से किसी एक दिशा की ओर उन्मुख रहता है—या तो कृति की ओर, या अनुवादक की ओर।

सामान्य रूप से यह स्वीकार करने मे किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए कि अनुवादक को अपनी मातृभाषा मे ही अनुवाद करना चाहिए, यद्यपि इस सामान्य नियम के अनेक अपवाद भी दिखायी पडते हैं। इसी प्रकार यह स्वीकार करने मे भी किसी को आपत्ति न होनी चाहिए कि जो भाषा जितनी ही समृद्ध और विकसित होगी, उतना ही सफल अनुवाद उसमे किया जा सकेगा। इस दृष्टि से अनुवाद और सृजनात्मक लेखन म पर्याप्त अन्तर है। विश्व की कितनी ही भाषाएँ ऐसी हैं, जिनका प्राचीन और मध्ययुगीन रचनात्मक साहित्य उनके आधुनिक रचनात्मक साहित्य से श्रेष्ठतर है, पर उन भाषाओ मे हुए अनुवाद के विषय मे यह कहना मुश्किल होगा। अत हम यह मानकर चल सकते है कि समयानुक्रम मे एक ही कृति के जो अनेक अनुवाद किसी भाषा में होंगे, उनमे क्रमश सफाई, दक्षता और बारीकी बढती जायेगी। कारण यह है कि जीवित भाषाओ का शब्द-भडार निरन्तर बढता जाता है और किसी भी भाषा मे जो नये-नये शब्द जुडते जाते हैं, वे अनुवाद-कार्य को सरलतर बनाने मे सहायक सिद्ध होते हैं। इतना ही नही, सजीव भाषाएँ निरन्तर प्रयोग के द्वारा लचीली और सुथरी बनती जाती हैं और अनेक बार एक ही शब्द के विभिन्न सदर्भों मे विभिन्न अर्थ उभार सकना सभव हो जाता है।

इन प्रक्रियाओ के महत्त्व को हम तब और अच्छी तरह समझेंगे जब यह सोचेंगे कि भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का एक अत्यत अपूर्ण साधन है। मनुष्य के मन मे इतनी अधिक और इतनी जटिल भावनाएँ उदित होती हैं कि उन सबको व्यक्त करन मे भाषा असमर्थ रहती है। प्रसिद्ध कवि शेली ने लिखा था कि जब उनका मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता था, तो उसमे एक के बाद एक असख्य बिंबो

की झड़ी लग जाती थी, किन्तु भाषा उन सब बिंबों को वहन करने में असफल रहती थी। इस असफलता को एक महान् कवि अपने लिए चुनौती मानकर सृजनात्मक स्तर पर श्रेष्ठ साहित्य की रचना किसी भी समय मे कर सकता है, चाहे वह वर्तमान समय हो या कि अतीत मे कोई समय। किन्तु अनुवादक के लिए यह बात नही कही जा सकती। सृजन और अनुवाद की प्रक्रियाओं में जो अंतर है, उसे ध्यान मे रखते हुए, हम कदाचित् एक नियम के रूप मे कह सकते हैं कि अविकसित भाषा मे श्रेष्ठ कविता तो लिखी जा सकती है, श्रेष्ठ अनुवाद नही किया जा सकता।

अटपटी लगने पर भी कभी-कभी यह बात सच-सी मालूम होती है कि अत्यन्त विकसित भाषा मे श्रेष्ठ कविता नही लिखी जा सकती है, श्रेष्ठ अनुवाद भले ही हो सके। विकसित भाषा मे जो चुस्ती, सफाई और अतिपरिचयात्मकता आ जाती है—सभी बातो को बडी कुशलता से कह सकने का जो मुहावरा बन जाता है—वह कविता के आदिम रहस्यपूर्ण कल्पनालोक को छिन्न-भिन्न कर उसे बिलकुल व्यावहारिक, दैनंदिन धरातल पर ले आता है। उस धरातल पर स्थित नपी-तुली कविता यदि हमें आकर्षित करती है तो शायद इसीलिए कि हमारी सौन्दर्य-दृष्टि बदल गयी है और हम असुन्दरता मे सुन्दरता खोजने के अभ्यासी बन चुके हैं। लेकिन खैर, यह एक दूसरी ही समस्या है। विकसित भाषाओं मे काव्य-सृजन की कठिनाई की ओर सकेत करने का उद्देश्य काव्यानुवाद की कठिनाइयो की ओर सकेत करना था। सभी जानते हैं कि कविता का अनुवाद कठिन ही नही, असभव कार्य है। कविता एक ऐसी निर्मिति है, जिसे ज्यो-का-त्यों उसकी अपनी भाषा में भी, अन्य शब्दों के द्वारा, व्यक्त नही किया जा सकता, दूसरी भाषा मे तो कोई सवाल ही नही उठता! बिंब, छन्द, ध्वनि, संगीत आदि के मामले मे ही नही, कितने ही अन्य सूक्ष्म और जटिल स्तरो पर भी, एक कविता, भाषा के इतने व्यापक और विस्तृत आयाम अपने आप मे सँजोये रहती है कि उसका अनुवाद नही किया जा सकता; पदान्वय, या लगभगीकरण भले ही कर लिया जाये। कदाचित् इसीलिए कविता के अनुवाद के मामले मे अब अनेक लोग पक्तिशः गद्य-रूपातर देने की प्रवृत्ति का समर्थन करने लगे हैं। एक असभव स्थिति के एक कामचलाऊ हल के रूप मे भले ही यह ठीक हो, किन्तु प्रकारातर से, यह एक चुनौती को स्वीकार करने से बचना भी होगा। हिन्दी के अधिकांश अनुवादको ने, इसीलिए, कविता का अनुवाद कविता मे ही करने की पद्धति अपनाई है। डब्ल्यू० बी० ईट्स की कविताओं का अनुवाद करते हुए, 'मरकत द्वीप का स्वर' मे डॉ० बच्चन लिखते हैं कि "शाब्दिक अनुवाद को मैं बहुत घटिया किस्म का अनुवाद मानता हूँ" (पृ० 144)। अनुवाद उनके लिए मौलिक सृजन है। प्रकारातर से यही सकेत हिंदी के अन्य काव्यानुवादक भी करते रहे हैं। 'मधुज्वाल'

नाम से श्री सुमित्रानंदन पंत ने 1929 में उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद—फारसी की मूल रुबाइयों का अर्थ असगर साहब गोंडवी से समझकर—किया था। 'विज्ञापन' शीर्षक उसकी भूमिका में पंत जी ने लिखा है "फिट्ज़ेरल्ड का कल्पना सौंदर्य अपना है, भाव उमर के। इसी का अनुसरण मैंने भी अपने इस चपल प्रयास में किया है। *इसलिए बुलबुल के साथ कोयल के स्वर और गुलाब के* साथ आम्रमंजरी की गंध भी इन स्वप्न-मदभरे गीतों में सहज ही मिल गयी है।"

श्री दिनकर ने, लारेंस की कविताओं के अपने अनुवाद 'आत्मा की आँखें' की भूमिका में, एक रोचक प्रसंग सुनाया है कि रूस में उनकी कविताओं का अनुवाद करते समय अनुवादकों ने 'सीपी और शंख' से भी कुछ कविताएँ ले ली, जब कि इस संग्रह की कविताएँ दिनकर जी द्वारा अनूदित अन्यान्य भाषाओं की कविताएँ थीं। परन्तु रूसी अनुवादकों ने ऐसा अज्ञानवश नहीं किया था, बल्कि उनकी राय थी कि 'सीपी और शंख' की कविताएँ मूल से केवल प्रेरणा लेकर चली हैं, बाकी वे, सब की सब, दिनकर जी की अपनी कल्पना से तैयार हुई हैं। इसलिए, हम अगर उन्हें मौलिक रचनाएँ मानकर चलें तो कोई दोष नहीं है।" (भूमिका, आत्मा की आँखें, पृ० 3)

अनुवाद एक नया मौलिक सृजन है या मूल रचना का शाब्दिक रूपांतरण ? यह बहस हम फिर उसी दुविधा में डाल देती है कि बीवी को हम खूबसूरत चाहते हैं या वफादार ? हिन्दी में कविता के अधिकतर अनुवादकों ने उसे 'खूबसूरत' पाना चाहा है यद्यपि भारतीयता के आदर्शों से बँधे होने के कारण, 'वफादारी का खयाल वे अपने दिल से पूरी तरह निकाल नहीं सके हैं।

हिन्दी में अनुवाद कार्य भारतेन्दु युग में तेज़ी से प्रारम्भ हुआ था। तब से लेकर आज तक के इतिहास को देखें तो हम यह जानकर प्रीतिकर आश्चर्य होगा कि न केवल भारतीय भाषाओं के वरन् अंग्रेज़ी और (अंग्रेज़ी के माध्यम से) विश्व की अनेक भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद हिन्दी में हो चुका है। यह दूसरी बात है कि अनुवाद के प्रति हमारे आलोचकों ने विशेष उत्साह नहीं दिखाया, अतः इन अनुवादों की न तो कोई खास चर्चा हुई, न शोध विषयों के वर्तमान अकाल के बावजूद हिन्दी अनुवाद के विविध पक्षों को लेकर कोई शोध-ग्रन्थ ही लिखे गये। कदाचित् इसीलिए एक श्रेष्ठ कृति के अनेकानेक अनुवादों की परम्परा हमारी भाषा में अधिक विकसित न हो सकी। प्रायः मान लिया गया कि यदि किसी रचना का एक अनुवाद किसी ने कर दिया तो वह पर्याप्त है, उसके बाद दूसरे या तीसरे अनुवाद की गुंजाइश या ज़रूरत नहीं समझी गयी। पर इसके साथ ही, यह उल्लेखनीय है कि कुछ कवियों और कृतियों का अनुवाद हिन्दी में बार-बार होता रहा है। इनमें शेक्सपियर और कालिदास तथा 'हैमलेट', 'मेघदूत' और '*गीता*' का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। उनके दसियों अनुवाद हमारी

भाषा मे हुए है तथा हो रहे हैं और पूरी आशा है कि आगे भी होंगे। फिट्जेरल्ड द्वारा अँग्रेजी म अनूदित 'रुबाइयात ऑफ उमर खैयाम' भी ऐसी ही कृति है। सन् 1930 से 1950 के बीच हिन्दी मे इसके लगभग एक दर्जन अनुवाद हो चुके थे। अनुवादकर्ताओं मे प्रमुख थे—सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पत, बच्चन, केशवप्रसाद पाठक, गिरिधर शर्मा, नवरत्न, बलदेवप्रसाद मिश्र, सूर्यनाथ तकरू, इकबाल वर्मा 'सेहर', गयाप्रसाद गुप्त, वृजमोहन तिवारी, रघुवंशलाल गुप्त, किशोरीरमण टडन, जगदम्बाप्रसाद हितैषी, आदि-आदि। खैयाम की रुबाइयो मे ऐसा क्या आकर्षण था कि उसी ओर इतने अधिक, इतने महत्त्वपूर्ण लोग आकर्षित हुए, यह सोचने की बात है। 'खैयाम की मधुशाला' के तीसरे सस्करण मे बच्चन जी ने सन् 1930 के बाद के राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन से उत्पन्न शोकजनक परिस्थितियों और निराशापूर्ण समय का चित्र खीचते हुए, यह सकेत किया है कि उमर खैयाम की कविता मे भावनात्मक अवलम्बन पाने का प्रयत्न उस काल मे कितना स्वाभाविक और अनिवार्य था। उन्ही दिनो 'श्रीमद्भगवद्गीता' के भी अनेक अनुवाद हिन्दी मे किये गये। एक ओर 'रुबाइयात ऑफ उमर खैयाम' और दूसरी ओर 'गीता' के प्रति अनुवादको की रुचि जागृत होना कोई आकस्मिक बात न थी। इसके पीछे विशुद्ध साहित्यिक रुचि ही नही, गम्भीर ऐतिहासिक और राजनीतिक कारण थे। तिलक और गाधी ने 'गीता' की जो व्याख्याएँ की थी, वे उस समय की ऐतिहासिक आवश्यकताओ को पूरा करने वाली व्याख्याएँ थी, ठीक उसी तरह जैसे कि आज बच्चन द्वारा रूपान्तरित 'जनगीता' और 'नागर गीता' एक बदले हुए परिवेश मे, एक व्यापकतर पाठक समुदाय के लिए,'गीता' की व्याख्या का प्रयास करती है। देश और काल के भिन्न-भिन्न सन्दर्भों मे अनुवाद किस प्रकार श्रेष्ठ रचनाओ के नये-नये अर्थ खोजता चलता है, यह हमारे अध्ययन का रोचक विषय हो सकता है। ऊपर के दो उदाहरणो द्वारा इसका कुछ आभास मिल सकेगा।

शेक्सपियर के नाटको के अनुवाद की परम्परा भी हमारे साहित्य मे भारतेंदु-युग से ही शुरू हुई थी। भारतेंदु हरिश्चद्र ने 'मर्चेण्ट ऑफ वनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ बधु' नाम से किया था। उनसे कुछ पहले बाबू बालेश्वरप्रसाद ने इस नाटक की कथा 'वेनिस का सौदागर' नाम से लिखी थी। तभी से शेक्सपियर के नाटको के बारे मे अनुवादको ने दो तरह की नीतियाँ अपना ली। लाला सीताराम बी० ए० और डॉ० रांगेय राघव ने शेक्सपियर के अनेक नाटको के अनुवाद गद्य में किये—अमृतराय ने भी 'हैमलेट' का अनुवाद गद्य मे किया, जब कि डॉ० बच्चन् ने 'मैकबेथ' और 'ऑथेलो' के अनुवाद हिन्दी के प्रसिद्ध 'रोला' छन्द मे किये। पद्य मे अनुवाद करने का कारण उन्होंने यह बताया कि "शेक्सपियर महान नाटककार ही नही, महान् कवि भी हैं और उनकी कविता उनके नाटको मे बिखरी पडी है।

जिस कवित्व का शीशमहल उन्होंने पद्य की विशाल छाती पर खड़ा किया है, उसे गद्य के शीश पर धरते ही वह गिरकर चकनाचूर हो जाता है।" (प्रवेशिका, पृ० ङ, 'मैकबेथ')

कविता का अनुवाद गद्य में हो या पद्य में, यह बहस हमारे सामने फिर उठ खड़ी होती है। पर सैद्धान्तिक विश्लेषण को छोड़कर, यहाँ कुछ ठोस उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट करना कदाचित् अधिक उपयोगी होगा। 'सप्तपर्णा' की भूमिका में श्रीमती महादेवी वर्मा ने संस्कृत की अनेक कृतियों के अंशों का गद्यानुवाद दिया है। कालिदास कृत 'अभिज्ञान-शाकुंतलम्' के एक श्लोक 'चित्रे निवेश्यपरिकल्पित. ' का अनुवाद है—"विधाता ने पहले चित्र बनाकर या अपने मानस में सभी रूपों को संश्लिष्ट करके उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की होगी। विधाता के विभुत्व और शकुन्तला के कमनीय कलेवर पर विचार कर यही जान पड़ता है कि इसकी रचना अलौकिक नारी रत्न के रूप में हुई है।" (पृ० 54)। इसी पुस्तक में, महादेवी जी ने 'शाकुंतल' के ही एक अन्य प्रसिद्ध श्लोक 'यास्यति अद्य शकुंतला. . ' का छंदबद्ध अनुवाद इस प्रकार किया है

"आज विदा होगी शकुंतला, सोच हृदय आता है भर-भर,
दृष्टि हुई धुँधली चिन्ता से, रुद्ध अश्रु से कंठ रुद्ध स्वर।
जब ममता से इतना विचलित, व्यथित हुआ वनवासी का मन,
तब दुहिता विछोह नूतन से पाते कितनी व्यथा गृहीजन।"

(पृ० 196)

'मेघदूत' के प्रसिद्ध श्लोक (आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु...) के भी महादेवी कृत अनुवाद को देखें—

"आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया !
ज्यों गजेंद्र क्रीड़ा में तन्मय, टकराता टीलों से निर्मय,
शैल शिखर संलग्न मेघ वैसे ही घिर छाया।
आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया।
स्नेह जगा देने वाले वे, सम्मुख हो बादल काले से,
रोक आँसुओं को कुबेर का अनुचर अकुलाया।
आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया। (सप्तपर्णा, पृ० 183)

दूसरी ओर, हमारे सम्मुख है, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत 'मेघदूत—एक पुरानी कहानी' शीर्षक व्याख्या, जिसमें श्लोकों का अर्थ गद्य में किया गया है, पर जिसमें केवल अर्थ नहीं, अन्य व्याख्यात्मक उल्लेख भी हैं। उपर्युक्त श्लोक का गद्य रूपान्तर द्विवेदी जी ने इस प्रकार किया है—(यक्ष) 'अचानक आषाढ़ मास की पहली तिथि को रामगिरि के सानुदेश में लगे हुए एक काले मेघ को देखकर व्याकुल हो उठा, जैसे कोई काला मतवाला हाथी पर्वत के

सानुदेश पर ढूंसा मारने का खेल खेल रहा हो।. .उत्कंठा जगानेवाले मेघ के सामने खड़ा होना क्या सहज है ? . आँसुओं का पारावार भीतर ही विक्षुभित हो रहा था, बाहर उसका कोई चिह्न नहीं दिखाई दे रहा था।" (मेघदूत—एक पुरानी कहानी, पृष्ठ 58)

यों तो प्रस्तुत रूपान्तरों के—चाहे वे गद्य में हों या पद्य में—अपने अलग आकर्षण हैं, किन्तु इनमें से जो छंदबद्ध हैं, वे सम्भवतः पाठकों को अधिक तृप्तिदायक प्रतीत होंगे। इससे कोई सामान्य निष्कर्ष निकालना उचित न होगा, पर सुझाव के रूप में हम कहना चाहेंगे कि विजातीय भाषाओं से अनुवाद करना हो तो छंदों का आश्रय लेकर अनुवाद की प्रभावोत्पादकता बढ़ाई जा सकती है, किन्तु सजातीय भाषाओं के मामले में अनुवाद करने की अपेक्षा लिप्यंतर और पादटिप्पणियों का सहारा लेना ज्यादा ठीक होगा, जैसा कि साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित रवीन्द्रनाथ के 'एकोत्तरशती' और 'गीत-पंचशती' आदि काव्य-संग्रहों में तथा हिन्दी में प्रकाशित लगभग समस्त उर्दू कविता के मामले में किया गया है। इसके विपरीत, आकाशवाणी द्वारा पिछले अनेक वर्षों से गणतन्त्र-दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित 'सर्वभाषा-कविसभा' की असफलता का मुख्य कारण 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक एकता' का विशेष आग्रह तो था ही, बहुत कुछ यह भी था कि अनेक सजातीय भाषाओं की कविताओं का भी हिन्दी अनुवाद कराने पर बल दिया गया। यही कारण था कि उर्दू, पंजाबी आदि जिन भाषाओं का सामान्य परिचय दिल्ली में उपस्थित श्रोताओं को था, उनके अनुवाद इन श्रोताओं को हास्यास्पद प्रतीत हुए थे। यह बिलकुल स्वाभाविक था। उर्दू कविता के हिन्दी अनुवाद की व्यर्थता का सुपरिचित प्रमाण है—उर्दू के दो प्रसिद्ध शेर और तथाकथित उनके हिन्दी अनुवाद

1—हम अपने दिल को यूँ समझा रहे हैं
वो घर से चल दिये हैं, आ रहे हैं।
(हम निज मन को ऐसा कहकर हैं समझाते,
प्रियतम गृह से चल दिये, शीघ्र ही हैं आते।)

2—उनके देखे से जो आ जाती है मुँह पे रौनक,
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।
(उनके दर्शन से जो आ जाती है मुख पर शोभा,
वे समझते हैं कि रोगी की दशा उत्तम है।)

सच तो यह है कि ये अनुवाद नहीं, मजाक हैं, लेकिन कुछ-कुछ मजाक जैसी ही चीज थी—'रामचरितमानस' के कुछ अंशों का निराला जी द्वारा खड़ी बोली में किया गया अनुवाद। हमें पूरा विश्वास है कि अनुवाद के रूप में, निराला जी के इस प्रयास की अपेक्षा कहीं अधिक सफल 'मानस' के वे अनुवाद होंगे, जो कि

रूसी और अंग्रेजी जैसी भाषाओं में किये गये हैं। माना कि अवधी की मध्ययुगीन, सांस्कृतिक व्यंजनाएँ रूसी और अंग्रेजी जैसी आधुनिक भाषाओं में शायद ही झलक सकी हों, किन्तु 'अनुवाद' की दृष्टि से सम्भवतः उन भाषाओं में होने वाले प्रयत्नों का मूल्य निराला जी के प्रयत्न से कहीं अधिक आँका जायेगा।

बहरहाल, यह प्रश्न, अनुवाद की समस्या से नहीं, अपितु अनुवाद के मूल्यांकन की समस्या से जुड़ा हुआ है, और एक कृति के अनेक अथवा सभी अनुवाद सम्मुख रखकर ही इस विषय को छेड़ा जा सकता है। यहाँ काव्यानुवाद की पद्धति की चर्चा के प्रसंग में, भूली-पी.ी के कवि मलयराय चौधुरी की लम्बी कविता 'जख्म' के कचन कुमार-कृत अनुवाद की अन्तिम पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"आक्रमण से पहले दो क्षण के लिए मैं दम ले रहा हूँ
धक्का खाकर गिर जाने के बाद खड़ा होकर
मैं फुफकार रहा हूँ, गरज रहा हूँ
घोड़े के बाल से जख्म टाँककर
25 साल तक सिर्फ बाएँ हाथ से लड़ता आ रहा हूँ
समस्त बिछुर सगे मोकाबिला करबार जोन्ये
आमार चोख मुख थमथम कोरछे एखन।" (जख्म, पृ० 23)

यहाँ अनुवाद और मूल दोनों को एक-दूसरे से जोड़कर गद्यानुवाद और लिप्यंतर की मिली-जुली पद्धति अपनाई गयी है। सजातीय भाषाओं की आधुनिक कविता के हिन्दी अनुवाद में यह ढंग काफी कारगर हो सकता है। विजातीय भाषाओं की आधुनिक कविता के हिन्दी अनुवाद के लिए डॉ० धर्मवीर भारती ने 'एक बीच का रास्ता' निकालने की कोशिश की है। 'देशांतर' नामक संकलन में उन्होंने योरुप और अमेरिका के इक्कीस देशों की एक सौ इकसठ कविताओं की हिन्दी छायाएँ प्रस्तुत करते हुए 'मफ्त' अनुवाद और 'शाब्दिक' अनुवाद—दोनों को समेटने की कोशिश की है। 'खूबसूरत' या 'वफादार' वाली दुविधा से जूझते हुए उन्होंने यत्न किया है कि "अनुवाद सुन्दर भी बने और विश्वसनीय भी।" (देशांतर, पृ० 7)। इसके लिए जो 'बीच का रास्ता' उन्होंने खोजा है, वह है—एक प्रकार की आवेशयुक्त, तरल भाषा, जिसे हम न ठीक-ठीक गद्य कह सकते हैं न पद्य। वह भाषा इन दोनों की सम्भावनाओं का तो उपयोग करती हुई, शब्दों और ध्वनियों के माध्यम से पृथक् संस्कारों, पृथक् काव्य मूल्यों और पृथक् बिम्ब-समूहों को जोड़ने में काफी कुछ समर्थ होती है। उदाहरण के लिए, रेनर मरिय रिल्के की 'पतझर की शाम' कविता प्रस्तुत है—

"चाँद से आयी हुई पवन झकोर
बाँध लेती है वृक्षों को
एक टटोलती पत्ती नीचे गिरती है

सड़क की टिमटिमाती रोशनियों के जाल में
दूर का तमाम गहराया अँधेरा दृश्य
धावा बोलता है अनिश्चय-ग्रस्त नगर पर' (देशांतर, पृ० 213-214)

कहना न होगा कि इस मामले में किसी भी तरह का सामान्य नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। लेकिन इस विषय के जटिल और अनिश्चित होने का अर्थ यह कदापि नहीं कि इसकी ओर से मुँह फेर लिया जाये। अनेक अर्थों में अनुवाद साहित्य को ही नहीं, भाषा को भी समृद्धि करता है, क्योंकि दूसरी भाषा की लहरें अनुवाद की भाषा में आ मिलती हैं। इस बात का ध्यान तो रखना ही होगा कि कहीं दूसरी भाषाएँ हमारी भाषा को पूरी तरह आप्लावित न कर दें, लेकिन इसके साथ ही इन भाषाओं की ओर मैत्री, सद्भावना और सदाशयता का हाथ सदा आगे बढ़ाये रखना होगा। अनुवाद, अपने ढंग से, *यही कार्य करता है।*

रूसी और अँग्रेज़ी जैसी भाषाओं मे किये गये हैं। माना कि अवधी की मध्ययुगीन, सास्कृतिक व्यजनाएँ रूसी और अँग्रेज़ी जैसी आधुनिक भाषाओं में शायद ही झलक सकी हो, किन्तु 'अनुवाद' की दृष्टि से सम्भवत उन भाषाओं में होने वाले प्रयत्नों का मूल्य निराला जी के प्रयत्न से कहीं अधिक आँका जायेगा।

बहरहाल, यह प्रश्न, अनुवाद की समस्या से नहीं, अपितु अनुवाद के मूल्याकन की समस्या स जुडा हुआ है, और एक कृति के अनेक अथवा सभी अनुवाद सम्मुख रखकर ही इस विषय को छेड़ा जा सकता है। यहाँ काव्यानुवाद की पद्धति की चर्चा के प्रसग मे, भूखी-पीढी के कवि मलयराय चौधुरी की लम्बी कविता 'ज़ख्म' के कचन कुमार-कृत अनुवाद की अन्तिम पक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

"आक्रमण से पहले दो क्षण के लिए मैं दम ले रहा हूँ
धक्का खाकर गिर जाने के बाद खडा होकर
मैं फुफकार रहा हूँ, गरज रहा हूँ
घोडे के बाल से ज़ख्म टाँककर
25 साल तक सिर्फ बाएँ हाथ से लडता आ रहा हूँ
समस्त किछुर सग मोकाबिला करबार जोन्ये
आमार चोख मुख थमथम कोरछे एखन।" (ज़ख्म, पृ० 23)

यहाँ अनुवाद और मूल दोनों को एक-दूसरे से जोडकर गद्यानुवाद और लिप्यतर की मिली-जुली पद्धति अपनाई गयी है। सजातीय भाषाओं की आधुनिक कविता के हिन्दी अनुवाद मे यह ढग काफी कारगर हो सकता है। विजातीय भाषाओं की आधुनिक कविता के हिन्दी अनुवाद के लिए डॉ० धर्मवीर भारती ने 'एक बीच का रास्ता' निकालने की कोशिश की है। 'देशातर' नामक सकलन मे उन्होंने योरुप और अमेरिका के इक्कीस देशो की एक सौ इकसठ कविताओं की हिन्दी छायाएँ प्रस्तुत करते हुए 'सफल' अनुवाद और 'शाब्दिक' अनुवाद—दोनों को समेटने की कोशिश की है। 'खूबसूरत' या 'वफादार' वाली दुविधा से जूझते हुए उन्होंने यत्न किया है कि "अनुवाद सुन्दर भी बने और विश्वसनीय भी।" (देशातर, पृ० 7)। इसके लिए जो 'बीच का रास्ता' उन्होंने खोजा है, वह है—एक प्रकार की आवेशयुक्त, तरल भाषा, जिसे हम न ठीक-ठीक गद्य कह सकते हैं न पद्य। वह भाषा इन दोनों की सम्भावनाओं का तो उपयोग करती हुई, शब्दो और ध्वनियो के माध्यम से पृथक् सस्कारो, पृथक् काव्य-मूल्यो और पृथक् बिम्ब-समूहो को जोडने मे काफी कुछ समर्थ होती है। उदाहरण के लिए, रेनर मरिय रिल्क की 'पतझर की शाम' कविता प्रस्तुत है—

"चाँद से आयी हुई पवन झकोर
बाँध लेती है वृक्षो को
एक टटोलती पत्ती नीचे गिरती है

सड़क की टिमटिमाती रोशनियों के जाल में
दूर का तमाम गहराया अँधेरा दृश्य
धावा बोलता है अनिश्चय ग्रस्त नगर पर' (दशांतर, पृ० 213-214)

कहना न होगा कि इस मामले में किसी भी तरह का सामान्य नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। लेकिन इस विषय के जटिल और अनिश्चित होने का अर्थ यह कदापि नहीं कि इसकी ओर से मुँह फेर लिया जाय। अनेक अंशों में अनुवाद साहित्य को ही नहीं भाषा को भी समृद्धि करता है, क्योंकि दूसरी भाषा की लहरें अनुवाद की भाषा में आ मिलती हैं। इस बात का ध्यान तो रखना ही होगा कि कहीं दूसरी भाषाएँ हमारी भाषा को पूरी तरह आप्लावित न कर दें, लेकिन इसके साथ ही इन भाषाओं की ओर मैत्री, सद्भावना और सदाशयता का हाथ सदा आगे बढ़ाये रखना होगा। अनुवाद अपने ढंग से, यही कार्य करता है।

भोलानाथ तिवारी

काव्यानुवाद

यो तो 'काव्य' में उपन्यास, कहानी, नाटक आदि भी समाहित हैं, किन्तु यहाँ 'काव्य' शब्द का प्रयोग 'कविता' के अर्थ मे किया जा रहा है।

कविता के अनुवाद को लेकर काफी विवाद रहा है। बहुतो की धारणा यह रही है कि कविता का अनुवाद हो ही नही सकता। मुख्यत काव्यानुवाद को ही दृष्टि मे रखकर इस प्रकार की बातें कही गयी हैं—

(1) All translation seems to me simply an attempt to *solve an unsolvable problem* —*Humboldt*

(2) It is useless to read Greek in translation Translators can but offer us a vague equivalent —Virginia Woolf

(3) There is no suc i thing as translation —May

(4) Traduttori traditori (अनुवादक वचक होते हैं)

—एक इतावली कहावत

(5) The flowering moments of the mind drop half their petals in speech and three fourth in translation

(6) Nothing which is harmonised by the bond of Muses can be changed from one language to another without destroying its sweetness —Dante

(7) Translation of a literary work is as tasteless as a stewed strawberry —H de Forest Smith

(8) Translation is meddling with inspiration

— Showerman

(9) Ideas can be translated but not the words and their associations —Sydney

वस्तुत कविता का अनुवाद करना बहुत कठिन तो है, किन्तु वह असम्भव है, यह नहीं कहा जा सकता। विश्व मे अब तक कई हजार कविताओं के अनुवाद हुए हैं। इन अनुवादो को एकदम अनधिकृत अथवा अग्राह्य मानकर अस्वीकार नही कर सकते। इस समय भी ऐसे अनुवाद हो रहे हैं, और आगे भी होते रहेंगे। ऐसी स्थिति मे जो हो चुका है, हो रहा है, भविष्य मे भी होता रहेगा, उसे कैसे कह दें कि नही हो सकता।

हाँ, यह अवश्य है कि कविताओं के बहुत कम ही अनुवाद मूल का पूरी तरह —कथ्य और कथन-शैली दोनो दृष्टियो से—प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु हम यह कब कहते हैं कि मूल कविता और उसका अनुवाद दोनो एक हैं, या दोनो मे अभिव्यक्ति और कथ्य की दृष्टि से कोई अन्तर नही है। अन्तर तो होता ही है। आखिर एक मूल और दूसरा अनुवाद जो ठहरा। और अगर हम यह मानकर चलें कि मूल मूल है और अनुवाद अनुवाद, अत दोनो पूर्णत. समान नही हो सकते, तो फिर यह मानने का प्रश्न ही नही उठता कि काव्यानुवाद सम्भव नही है। जो लोग काव्यानुवाद की असभाव्यता के प्रति विश्वासी हैं, वे कदाचित् यह देखकर असम्भव होने की बात करते हैं कि प्राय अनुवाद मूल की बराबरी नही कर पाता। यदि ऐसा है तो वह तो सचमुच ही नही कर पाता, और कर भी नही सकता। आखिर एक मूल है और दूसरा उसका रूपान्तर।

गर्ज यह कि काव्यानुवाद—जो किसी कविता का यथासम्भव निकटतम समतुल्य होता है, ठीक मूल ही नही होता—हो सकता है, किया जा सकता है। यह बात दूसरी है कि कभी तो वह मूल के काफी निकट पहुँच जाता है, कभी दूर रह जाता है, और कभी काफी दूर। वैसे तो किसी भी रचना का अनुवाद सरल नही होता, किन्तु कविता का अनुवाद इसलिए और भी कठिन होता है कि कई बातो मे कविता अन्य रचनाओं से अलग होती है। इनमे से कुछ वे तत्त्व होते हैं, जो अन्य मे नही होते, और जिन्हे अनुवाद मे ला पाना काफी कठिन होता है। यहाँ कुछ इस प्रकार के तत्वो पर विचार किया जा रहा है।

इस प्रसग मे सबसे बडी बात यह है कि कविता जो कुछ प्रभाव पाठक या श्रोता पर डालती है वह न तो अकेले कथ्य (content) का होता है, न अकेले कथन या अभिव्यक्ति (expression) का। वह दोनो का ही योग होता है। और ये दोनो भी एक सीमा तक एक दूसरे पर आश्रित होते हैं—गद्यानुवाद की तुलना मे बहुत अधिक। कथ्य की विशिष्टता विशिष्ट अभिव्यक्ति पर और अभिव्यक्ति की विशिष्टता विशिष्ट कथ्य पर निर्भर होती है। किन्तु, हर भाषा मे कथ्य और अभिव्यक्ति का यह तालमेल उसी अनुपात मे नहीं बैठाया जा सकता और न तो हर भाषा मे कथ्य और अभिव्यक्ति के योग से एक-सा प्रभाव ही उत्पन्न किया जा सकता है। यही कारण है कि काव्यानुवाद मे प्राय. मूल प्रभाव का, या वह

प्रभाव उत्पन्न करने वाले मूल काव्य-तत्त्वों का, कुछ अंश छूट जाता है, और कुछ ऐसा अंश कभी-कभी जुड भी जाता है जो मूल मे नही होता। अनेक लोग इस जुडने को इस आधार पर आवश्यक भी मानते हैं कि इससे वह कमी, एक सीमा तक, पूरी हो जाती है जो कुछ छूट जाने से उदभूत होती है, किन्तु वास्तविकता यह है कि यह जोडने से अनुवाद में जान तो आ जाती है, किन्तु वह मूल से और अधिक हट जाता है, क्योंकि जो तत्त्व जुडते हैं, प्रायः वही नही होते जो छूट जाते हैं, वे प्रायः किसी-न-किसी रूप में उससे भिन्न होते है। इस 'और अधिक हट जाने' को गणितीय रूप मे यो दिखाया जा सकता है क = मूल कविता, ख = अनुवाद में छूटे तत्त्व, ग = अनुवादक द्वारा जोडे गये नये तत्त्व। स्पष्ट ही 'क—ख' 'क' के अधिक निकट है बनिस्बत '(क—ख) + ग' के। फिट्जेरल्ड ने उमर खैयाम के अनुवाद मे अपनी ओर से काफी जोडा है। उन्होंने स्पष्ट कहा है, " . अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार मूल को फिर से ढालना चाहिए—मुर्दा भरे गीध की अपेक्षा मैं जीवित गौरैया चाहूँगा।" इस तरह वे इस जोडने या संस्कार करने के पक्षपाती थे। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि इस छूट जाने से अनुवाद मूल से दूर पड जाता है, और जोडने या संस्कार करने से और भी दूर पड जाता है, अतः वह अनुवाद से अधिक, मूल पर आधारित, नयी रचना सा हो जाता है।

बोरिस पास्तरनाक की कविता The Wind का धर्मवीर भारती द्वारा किया गया अनुवाद जोडने-छोडने का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है—

This is the end of me but you live on
The wind, crying and complaining,
rocks the houses and the forest,
not each pine tree separately,
with the whole boundless distance,
like the hulls of sailing ships,
ridding as anchor in a bay.
It shakes them, not out of mischief,
and not in aimless fury,
but to find for you, out of its grief,
the words of a lullaby

मैं व्यतीत हुआ, पर तुम अभी हो, रहो।
हवा, चीखती चिल्लाती हुई हवा--झकझोर रही है
मकानो को, जगलो को
चीड के अलग-अलग पेडों को नही
वरन सबो को एक साथ—तमाम सीमाहीन दूरियों को—

किसी खाड़ी में लंगर डाले हुए, लहरों पर उठते-गिरते हुए
तमाम जहाजों की तरह
और हवा उन्हें झकझोर रही है
केवल चंचलतावश नहीं,
न निष्प्रयोजन क्रोध से अन्धी होकर,
वरन अपनी चरम पीड़ा में से,
मन्थन में से,
तुम्हारी लोरी के लिए उपयुक्त शब्द
खोजते हुए।

काव्यानुवाद की मुख्य कठिनाइयाँ निम्नांकित हैं—

(क) स्रोत-भाषा के सभी शब्दों के लिए लक्ष्य-भाषा में प्राप्त शब्द आंतरिक, बाह्य तथा प्रभाव की दृष्टि सर्वदा समान नहीं होते।

(ख) अलंकारों का अनुवाद काफी कठिन है और कभी-कभी तो असम्भव-सा हो जाता है।

(ग) काव्यानुवाद में छन्दों की स्थिति भी अलंकारों से कम जटिल नहीं है।

(घ) काव्यानुवादक कवि होता है, और वह अपने व्यक्तित्व को मूल रचना और अनुवाद के बीच में लाने से अपने को रोक नहीं पाता—शायद रोक भी नहीं सकता।

(ङ) काव्य की अर्थ-रचना और अभिव्यंजना की जटिलताएँ प्रायः अनूद्य नहीं होतीं, या बहुत कम ही होती हैं।

(च) विशिष्ट कविता का अनुवाद विशिष्ट व्यक्तिनिष्ठ तथा विशिष्ट मनोदशानिष्ठ होता है।

(छ) तत्त्वतः एक भाषा की काव्य रचना अर्थतः, अभिव्यक्ति, और प्रभावतः केवल उसी भाषा में हो सकती है, किसी अन्य में नहीं।

आगे संक्षेप में इन पर विचार किया जा रहा है।

साहित्यकार साहित्य में शब्दों का प्रयोग चुनकर करता है। कवि कविता लिखने में और भी अधिक चयन करता है। उसमें वह जिन शब्दों का प्रयोग करता है, वे शब्द प्रायः अपने कोशीय अर्थ या सामान्य अर्थ के अतिरिक्त अपनी ध्वनि से कुछ और अर्थ भी देते हैं। ध्वनि और अर्थ का यह सम्बन्ध उन चुने हुए शब्दों की विशेषता होती है, और इनके कारण कविता में एक विशेष जीवंतता आ जाती है। अनुवाद में प्रायः उस शब्द का प्रतिशब्द कोशीय अर्थ ही दे पाता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि प्रायः कविता का अनुवादक कोशार्थ-स्तर का ही अनुवाद कर पाता है ध्वनि या वर्णमैत्री आदि के स्तर का अनुवाद इसलिए सम्भव नहीं हो पाता कि हर भाषा में इस प्रकार के शब्द होते ही नहीं जिनमें अर्थ और ध्वनि का

यह सम्बन्ध हो। मान लें किसी हिन्दी कविता मे 'बिजली' शब्द आया है। स्पष्ट ही बिजली मे 'तेजी' और 'तरलता' की भी ध्वनि है। उसके स्थान पर अँग्रेज़ी मे thunder या thunder-bolt रखें तो इनमे 'कड़क' है और lightning रखें तो 'चकाचौंध' हैं। इस तरह काव्यभाषा मे ये शब्द बिजली के पर्याय नहीं हैं, यद्यपि सामान्य भाषा मे हैं। इसका आशय यह हुआ कि इन शब्दो के द्वारा अनुवाद करने मे मूल की 'तेजी' और 'तरलता' चली गयी, और नये तत्व 'कड़क' या 'चकाचौंध' की वृद्धि हो गयी। अर्थात्, कुछ घट गया और कुछ बढ गया।

एक बात और। हर भाषा के हर शब्द का अपना अर्थ बिम्ब होता है, जो सास्कृतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध होता है। दूसरी भाषा का उसी का समानार्थी शब्द उस पृष्ठभूमि मे युक्त न होने के कारण वैसा अर्थ-बिम्ब नही उभार सकता। किसी अँग्रेज़ी कवि की कविता मे प्रयुक्त spring शब्द का ठीक प्रतिशब्द हिन्दी मे 'वसन्त' इसलिए नही हो सकता कि अँग्रेज़ी-भाषी के मन मे 'स्प्रिंग' शब्द मे इग्लैंड के 'स्प्रिंग' का चित्र है, जो भारतीय वसन्त के चित्र से सर्वथा भिन्न है। अत उस कविता के हिन्दी के अनुवाद को पढने वाले पाठक के मन में जो अर्थ-बिम्ब उभरेगा वह भारतीय वसन्त का होगा जबकि होना चाहिए इग्लैंड के 'स्प्रिंग' का। ऐसे ही रूस का 'जाडा' अरब का 'जाडा' नही हो सकता, न भारत की 'गर्मी' फ्रास की 'गर्मी'। काव्यभाषा मे प्रयुक्त इन शब्दो का प्रतिनिधित्व इसीलिए किसी भी दूसरी भाषा के समानार्थी शब्दो द्वारा कदापि नही किया जा सकता।

काव्य की भाषा प्राय अलकार-प्रधान होती है, किन्तु एक भाषा के अलकारो को दूसरी भाषा मे ठीक ठीक उतार पाना कठिन, और कभी कभी तो असम्भव, हो जाता है। यो तो अर्थालकार भी उपमानो की असमानता के कारण कभी-कभी अनुवाद मे कठिनाई उत्पन्न करते हैं (जैसे 'वह उल्लू है' मे 'उल्लू' मूर्खता का प्रतीक है, किन्तु इसका अँग्रेज़ी अनुवाद करना हो और उल्लू के स्थान पर owl रख दें तो काम नही चलेगा, क्योकि अँग्रेज़ी मे उल्लू 'बुद्धिमान' माना जाता है), किन्तु अनुप्रास आदि शब्दालकारों में तो यह कठिनाई और भी बढ जाती है। 'कनक कनक तें सौगुनी .. *.' का किसी भाषा मे तब तक अनुवाद नही हो सकता जब तक उस भाषा मे भी कोई ऐसा शब्द न हो जिसका अर्थ 'सोना' तथा 'धतूरा' दोनो हो। यही स्थिति—

रहिमन पानी राखिए बिनु पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानुस चून।

की भी है। 'चमक', 'इज्जत', 'पानी' तीन तीन अर्थ वाला एक शब्द हो तब कहीं इसका अनुवाद हो सकेगा। और 'देव पतिर्विदुषि ! नैषधराजगत्या' के अनुवाद मे तो नल, इन्द्र, अग्नि यम, वरुण—इन पाँच अर्थों वाला एक शब्द चाहिए। (आगे

आमद सहरे निदा जे मयखान-ए-मा ।
के रिन्द खरावाती व दीवान-ए-मा ।
बरखेज कि पुरकुनेम पैमाना जे मय,
जाँ पेश कि पुरकुनद पैमाना-ए-मा ।

(सुबह होते ही मदिरालय से आवाज आयी कि ऐ पीने वाले व मेरे दीवाने ! उठ और शराब से अपने प्याले को भर ले, कब्ल इसके कि हमारे शरीर की मिट्टी से बने प्याले भरें अर्थात् हम मर जायें)। —उमर खैयाम

Dreaming when Dawn's left hard was in the sky
I heard a *voice within the tavern cry,*
"Awake, my little ones, and fill the cup
before Life's Liquor in its cup be dry"
—Fitsgerald (Rubaiyat of Omar Khayyam, 2)

अँगड़ाता था अरुण खड़ा, जब बढ़ा वाम कर अम्बर मे
मुझे सुन पड़ा स्वप्न-राज्य में तब यह स्वर मदिरा-घर मे
व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन-प्याली मे हाला
जाग जाग, *अय मेरे शिशु-दल, ढाल ढाल मधु पी प्याला।*
—केशवप्रसाद पाठक (रुबाइयात उमर खैयाम, 2)

वाम-कनक-कर ने उषा के
जब पहला प्रकाश डाला,
सुना स्वप्न मे मैंने सहसा
गूँज उठी यो मधुशाला—
"उठो, उठो, ओ मेरे बच्चो,
पात्र भरो, न विलम्ब करो,
सूख न जावे जीवन-हाला,
रह जावे रीता प्याला।
—मैथिलीशरण गुप्त (रुबाइयात उमर खैयाम, 1)

उषा ने ले अँगड़ाई, हाथ
दिये जब नभ की ओर पसार,
स्वप्न मे मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार—
उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख,

नही तो तन-प्याली की शीघ्र
जायगी जीवन-मदिरा सूख।"
—बच्चन (ख़ैयाम की मधुशाला, 2)

पौ फटते ही मधुशाला मे, गूंजा शब्द निराला एक,
मधुवाला से हँस-हँस कर यो कहता था मतवाला एक—
स्वाँग बहुत है रात रही पर थोडी, ढालो ढालो शीघ्र
जीवन ढल जाने के पहले ढालो मधु का प्याला एक।
—रघुवंशलाल गुप्त (उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ, 2)

खोलकर मदिरालय का द्वार
प्रात ही कोई उठा पुकार
मुग्ध श्रवणो मे मधु रव घोल,
जाग उन्मद मदिरा के छात्र!
ढुलक कर यौवन मधु अनमोल
शेष रह जाए नही मृदु मात्र,
ढाल जीवन मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र।
—सुमित्रानन्दन पन्त (मधुज्वाल, 2)

मूल और अनुवादो की तुलना से यह स्पष्ट है कि हर अनुवादक ने मूल बात को अपने ढग से कहा है। काव्यानुवाद मे यह बहुत बडी बाधा है कि अन्य अनुवादों की तुलना मे इसमे अनुवादक का व्यक्तित्व मूल और अनुवाद के बीच मे अधिक आ जाता है, अत मूल और अनुवाद मे अन्तर पड जाता है, और यह अन्तर वैज्ञानिक साहित्य, सूचना साहित्य, या उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के अनुवादो की तुलना मे बहुत ज्यादा होता है।

निष्कर्षत सफल काव्यानुवाद बहुत ही कठिन कार्य है, किन्तु वह असम्भव नहीं है। अगर उसे असम्भव कहें तो 'कविता का अनुवाद असम्भव है' का अर्थ केवल यह हुआ कि अनुवाद मूल कविता से प्राय अभिव्यक्ति मे, तथा कभी-कभी कथ्य मे भी, हट जाता है, अत उसे सैद्धान्तिक स्तर पर 'पूर्ण' अनुवाद नही कह सकते। किन्तु वास्तविकता यह है कि अनुवाद मे इतना तो मानकर ही चलना पडेगा, और मुख्यत कविता के अनुवाद मे, कि वह मूल नही होगा, मूल का अनुवाद ही होगा और अनुवाद अपवादो को छोड दें तो, मूल के निकट ही होता है, मूल नही होता, हो भी नही सकता—न तो कथ्य मे, न कथन मे और न इन दोनो के सम्मिलित प्रभाव मे।

काव्यानुवाद की असम्भाव्यता में विश्वास रखने वालो का ध्यान एक बात

की ओर प्राय नहीं जाता कि ऊपर जिन कठिनाइयों का संकेत किया गया है, वे सभी प्रकार के काव्यानुवादों में नहीं मिलतीं। यदि स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा में सांस्कृतिक, भाषा-पारिवारिक और कालिक अन्तर हो तब तो ये मिलती हैं, किन्तु यदि अन्तर न हो तो ये काफी कम हो जाती हैं, और कभी-कभी तो समाप्त भी हो जाती हैं। उदाहरण के लिए फ्रांसीसी से हिन्दी में अनुवाद करने में जो कठिनाई होगी, उसकी तुलना में अंग्रेजी में अनुवाद करने में बहुत कम होगी। ऐसे ही संस्कृत से प्राकृत या प्राकृत से संस्कृत में या बंगला से हिन्दी या हिन्दी से बंगला में अनुवाद करने में उपर्युक्त कठिनाइयाँ बहुत कम होती हैं। कभी-कभी तो केवल सामान्य शाब्दिक और व्याकरणिक परिवर्तन से ही काम चल जाता है—

संस्कृत—ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरंबितकोकिलकूजितकुंजकुटीरे।
हिन्दी—ललित लवंग लता परिचुंबित कोमल मलय समीर।
मधुकर-निकर कलित कोकिल से कूजित कुंज-कुटीर।
(डॉ० विनयमोहन शर्मा)

सामान्य भाषा में कही गयी बात का अनुवाद अपेक्षाकृत बहुत सरल होता है, किन्तु काव्य-भाषा अपनी अर्थ-रचना में बहुत जटिल होती है। यह जटिलता ही काव्य के सौन्दर्य की जननी है, किन्तु साथ ही, यही जटिलता काव्यानुवाद में सबसे अधिक बाधक भी होती है। इसीलिए जिन पंक्तियों की काव्यभाषा अर्थ-रचना के स्तर पर जितनी ही जटिल होती है, उनका अनुवाद उतना ही कठिन होता है, तथा उसके अनुवाद के मूल से उतना ही दूर चले जाने की आशंका भी उतनी ही अधिक होती है। इसी तरह जिस साहित्यिक रचना का अभिव्यंजना-पक्ष जितना ही स्थूल और सपाट होगा, उसका अनुवाद उतना ही सरलता से किया जा सकेगा किन्तु इसके विपरीत जिसका अभिव्यंजना-पक्ष जितना ही सूक्ष्म और जटिल होगा, उसको भाषान्तरित करना उतना ही कठिन होगा तथा उसके, मूल से, उतना ही दूर हट जाने की आशंका होगी। यही कारण है कि 'सूक्ष्म और जटिल अभिव्यंजना प्रधान' तथा 'अर्थ-जटिल' रचना का अनुवाद सभी के वश का नहीं, उसको छंदबद्ध कर पाना तो और भी कठिन है, और इसी कारण कम ही अनुवादक इसमें समर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि किसी में ऐसी क्षमता है, तो भी वह ऐसी रचना का अनुवाद अन्य अनुवादों की तरह, जब भी चाहे, नहीं कर सकता। किसी मौलिक रचना के लेखक की तरह ही, ऐसा अनुवाद भी बहुत कुछ विशिष्ट 'मूड' या 'मानसिक स्थिति' पर निर्भर करता है। यही नहीं, समर्थ काव्यानुवादक, उपयुक्त 'मूड' के होने पर भी किसी कवि की कुछ ही रचनाओं

का अनुवाद सफलतापूर्वक कर सकता है, सभी का नही। और जब, एक कवि की सभी कविताओ का कोई एक काव्यानुवादक सफल अनुवाद नही कर सकता, तो फिर, सभी प्रकार के कवियो की सभी प्रकार की रचनाओ के एक व्यक्ति द्वारा अनुवाद किये जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत, अन्य किसी प्रकार के अनुवादो में ऐसी कठिनाई नही होती। इस रूप मे, विशिष्ट काव्य-रचना का अनुवाद भी विशिष्ट काव्य-रचना की तरह ही, विशिष्ट मनोदशानिष्ठ होता है।

इस बात को यो भी समझा जा सकता है कि कविता अनुभूति है और सच्ची अनुभूति अनूद्य नही हो सकती। साथ ही कोई कवि अपने जिन क्षणो को कविता मे उतारता है, वे उसके अपने होते हैं। किसी भी कवि के सारे क्षणो को कोई भी दूसरा कवि अनुवादक जी नहीं सकता, जिये भी नही हो सकता, चाहे वह मूल कवि की तुलना मे कितना भी बडा कवि क्यो न हो। इसी लिए किसी छोटे-से-छोटे कवि की भी सारी कविताओ का अच्छा अनुवाद कोई एक अनुवादक, चाहे वह कितना भी बडा कवि क्यो न हो, नही कर सकता, उसे करना भी नही चाहिए। अनुवादक यदि अच्छा अनुवाद करना चाहता है—मूल के साथ पूरा न्याय तो वह कदाचित् नही कर सकता, किन्तु कम-से-कम वह यदि चाहता है कि मूल के साथ अन्याय न हो—तो उसे किसी कवि की कविताओ से अपनी रुचि और अनुभूति के अनुकूल केवल कुछ रचनाएँ चुन लेनी चाहिए, और उन्ही का अनुवाद करना चाहिए। हिन्दी मे ऐसा करने वाले धर्मवीर 'भारती' अपने काव्यानुवादो म उन लोगो की तुलना मे (मैं नाम नही लेना चाहता) बहुत अधिक सफल हैं, जिन्होने किसी एक कवि को लेकर उसकी बहुत सारी कविताओ का अनुवाद कर डाला है। इन पक्तियो के लेखक ने भी काव्यानुवाद किये हैं और मेरी यह निश्चित मान्यता है कि अन्य प्रकार के अनुवादो की तरह काव्यानुवाद थोक का धन्धा नही हो सकता।

हर कवि भाषा विशेष का ही होता है, वह जो कुछ कहता है, वह केवल उसी भाषा मे कहा जा सकता है, और उसी रूप मे कहा जा सकता है। उसकी महानता मूल रचना मे होती है, और मूल को पढकर ही हमे उसकी महानता के दर्शन हो सकते हैं। अनुवाद के द्वारा हमे कवि की छाया ही मिल सकती है, कवि नही, इसीलिए काव्यानुवाद का काम उन लोगो को मूल रचयिता या रचना का परिचय मात्र देना होता है, जो भाषा की कठिनाई के कारण उसका परिचय पाने में असमर्थ होते हैं। काव्यानुवाद रचयिता या रचना को उसके कथन और कथ्य की पूरी गरिमा के साथ लक्ष्य भाषा मे ला पाने मे समर्थ नही होता।

पश्चिम मे यह भी एक विवाद रहा है कि कविता का अनुवाद पद्य मे करें

या गद्य मे। वस्तुत इन दोनो के पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

कविता का अनुवाद पद्य मे होना चाहिए, इसके पक्ष में निम्नाकित बातें हैं — (1) कविता' और 'कविता से इतर' साहित्यिक रचना मे सबसे स्पष्ट भेद यह रहा है कि कविता छदबद्ध होती है, चाहे वह मुक्त छन्द ही क्यो न हो। अत छद से कविता का सम्बन्ध अनादिकाल से है। ऐसी स्थिति में उसका अनुवाद छदबद्ध होना चाहिए। (2) मूल रचना छन्दबद्ध है, अत इसके गद्यानुवाद मे उसका एक यह अत्यन्त आकर्षक तत्त्व छूट जाता है, और अनुवाद अन्य बातो के अतिरिक्त इस एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व की दृष्टि से भी मूल से अलग हट जाता है तथा घटकर रह जाता है। (3) कविता काव्य-आनन्द के लिए पढ़ी जाती है, केवल भाव या विचार के लिए नहीं, और यह काव्यानन्द अन्य बातो के अतिरिक्त छदबद्धता या उसके कारण आये सगीतात्मक तत्त्व, लय, ध्वनि आदि मे भी होता है। ऐसी स्थिति मे गद्यानुवाद पाठक को वह काव्यानन्द नही दे सकता जो पद्यानुवाद या छन्दानुवाद दे सकता है। (4) अनुवाद का अर्थ ही है कि वह अधिक-से-अधिक मूल के समान या समीप हो। मूल कविता है, अत अनुवाद भी कविता ही होना चाहिए। (5) काव्य का काव्यत्व काव्योचित भाषा-सरचना तथा शब्द-क्रम आदि ऐसी बातों मे भी होता है जो गद्यानुवाद काव्यानुवाद के लिए उपयुक्त नहीं है।

इसके विपरीत निम्नाकित बातें गद्यानुवाद के पक्ष में जाती हैं—(1) हर अनुवादक छद मे अनुवाद नहीं कर सकता। छदानुवाद सहज प्रतिभा, श्रम तथा अभ्यास के बिना सम्भव नही। (2) पद्य मे छद, तुक, गति आदि के बन्धन होते हैं, अत अनुवाद को मूल के समीप नही रखा जा सकता। यही कारण है कि विश्व मे जितने भी पद्यानुवाद हुए हैं वे अनेक दृष्टियो से मूल से दूर है। जैसे कही कोई शब्द छोड दिया गया है तो कही कोई शब्द जोड दिया गया है और कहीं कुछ परिवर्तन करके सक्षेप या विस्तार कर दिया गया है। (3) कविता म शब्दो का चयन होता है। छदानुवाद म मूल के चयन को ला पाना कठिन होता है। इसीलिए छदानुवाद सटीक नही हो पाता। लक्ष्य भाषा मे चयन की गुजाइश होने पर भी छदानुवाद मे उसका लाभ नही उठाया जा सकता।

इस प्रसग मे 'क्षतिपूर्ति-सिद्धान्त' (Theory of Compensation) की बात भी कुछ लोग करते हैं। अर्थात् पद्यानुवाद या छन्दानुवाद ही करना चाहिए। इससे कुछ छूटने के साथ कुछ जुड भी जाता है, अत क्षतिपूर्ति (Compensation) हो जाती है। मेरी आपत्ति यह है कि क्षतिपूर्ति तो हो जाती है किन्तु अनुवाद 'अ' के छूटने से तथा 'व' के जुडने से मूल से और दूर चला जाता है।

अन्त मे, मेरी अपनी राय यह है कि कविता का अनुवाद पहले तो पद्य रूप मे ही करने का प्रयास करें, यदि ठीक अनुवाद न हो पा रहा हो तो मुक्त छद मे

अनुवाद करें। और यदि उसमे भी कठिनाई हो रही हो, तब गद्य मे अनुवाद करें।

अलकारो के अनुवाद

काव्यानुवाद में अलकारो के अनुवाद की समस्या अलग ही है। अलकार दो प्रकार के होते हैं—शब्दालकार, अर्थालकार। शब्दालकार के आधार दो हैं—'ध्वनि-समानता' तथा 'एक शब्द के एकाधिक अर्थ'। जहाँ तक ध्वनि-समानता वाले अनुप्रास के विविध भेदो का प्रश्न है, इनके अनुवाद के लिए लक्ष्यभाषा में स्रोत के शब्दो के ऐसे प्रतिशब्दो की खोज आवश्यक है, जिनमें ध्वनि-साम्य हो। यह खोज काफी कठिन है—कभी-कभी असम्भव भी। उदाहरण के लिए, 'सत्य सनेह सील सुख सागर' के किसी भी भाषा मे अनुवादक को इन पाँचो शब्दो के लिए ऐसे प्रतिशब्द खोजने पड़ेंगे जिनमें आरम्भिक ध्वनि समान हो। किन्तु स्पष्ट ही यह बहुत कठिन है। अंग्रेजी की ही बात लें, अंग्रेजी मे कम-से-कम इनके ऐसे पर्याय नही है। 'मोहनी मूरत साँवरी सूरति,' 'ककण किंकिनि नूपुर धुनि सुनि,' 'बिरति बिवेक बिनय बिज्ञाना' अथवा अंग्रेजी 'How high His Highness holds his haughty head' (शेक्सपियर) या ऐसी किसी भी भाषा की आनुप्रासिक सौंदर्ययुक्त पंक्ति का दूसरी भाषा मे ऐसा अनुवाद कर पाना, जिसमें मूल अल-कार अक्षुण्ण रहे, बहुत कठिन है। दूसरे प्रकार के शब्दालकार मे यमक और श्लेष हैं। इनका अनुवाद और भी कठिन है। एक-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे—

यमक—तो पर वारो उरबसी सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी समान।
श्लेष—अजौं तर्‌योना ही रह्यो श्रुति सेवक इक अग।
नाक बास बेसरि लह्यो बसि मुकतन के सग।

स्पष्ट ही किसी भी भाषा में अनुवाद इन अलकारो को अनुवाद मे नही ला सकता, क्योंकि इनके इन अर्थों वाले पर्याय दूसरी भाषा मे असभव हैं।

वस्तुत केवल ऐसी भाषाओ के स्रोत और लक्ष्य भाषा होने पर ही यमक और श्लेष के अनुवाद सभव हैं जिनके शब्द-भडार में समानता हो। जैसे सस्कृत-हिन्दी, हिन्दी-पजाबी, बँगला-उड़िया। किन्तु इनमे भी इन अलकारो को अनुवाद मे भी उतारना तभी सभव होता है, जब ये सज्ञा या विशेषण शब्दो पर आधारित हो। सर्वनाम या क्रिया-शब्द पर आधारित होने पर इन्हें उतार पाना सभव नही, क्योंकि, प्राय दो भाषाओ में सर्वनाम और क्रिया-रूप की समानता नहीं होती। भाषाओ का अलग अस्तित्व मूलत इन्ही के अन्तर पर आधारित होता है।

अर्थालकारो (आगे इन्हे केवल अलकार कहा जायेगा) की समस्या कुछ दूसरे प्रकार की है। इसमे दो स्थितियाँ सभव हैं—

(क) जब स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा मे अलकारो (अर्थालकारों) के स्तर

पर समानता हो।

(ख) जब समानता न हो।

दोनो मे समानता कई प्रकार की हो सकती है। उदाहरणार्थ—(1) जिन अलकारो का प्रयोग स्रोत भाषा के साहित्य मे होता हो, उन्ही का प्रयोग लक्ष्य भाषा मे भी होता हो। (2) दोनो मे वे प्रयोग समान स्थितियो मे होते हो। (3) दोनो मे समान उपमानो का प्रयोग होता हो। (4) दोनो मे उपमान समान भाव व्यक्त करते हो।

यदि ये चारो समानताएँ हैं तो अनुवादक के सामने कोई जटिल समस्या नही आती। वह जैसे अन्य वाक्यो के अनुवाद करता है, उसी प्रकार अलकारयुक्त वाक्यो के भी कर देता है, और किसी प्रकार की कोई गडबडी नही होती। सस्कृत से हिन्दी मे अनुवाद करते समय इन समानताओ के कारण ही अनुवादक को अलकारो के अनुवादो में कोई विशेष परेशानी प्राय. नही होती। इन चारो मे यदि 1 तथा 2 मे समानता नही है या असमानता है तो भी विशेष परेशानी की बात नही है। लक्ष्य भाषा का पाठक अनुवाद को पढकर गुमराह नही होता और न उसकी रसानुभूति मे कोई विशेष व्यवधान उपस्थित होता है, या रसाभास की स्थिति आती है।

3 तथा 4 की असमानता अनुवादक के लिए टेढी खीर बन जाती है। मान लीजिए, स्रोत भाषा मे स्त्री की जघा की उपमा केले के चिकने स्तम्भ से दी गयी है, किन्तु लक्ष्य भाषा ऐसे क्षेत्र की है जहाँ केले होते ही नही, अत उसके सौन्दर्य से वे लोग अपरिचित हैं, परिणामत उनकी भाषा म स्रोत भाषा की उपमा का कोई विशेष अर्थ नही है। अनुवादक यदि उसका उसी रूप मे अनुवाद कर दे तो वह उपमान लक्ष्य भाषा-भाषी को अपेक्षित सौन्दर्य-बोध नही करा सकता है।

वस्तुतः यहाँ भी स्थिति दो प्रकार की हो सकती है—एक तो वह जब स्रोत सामग्री मे प्रयुक्त उपमान से लक्ष्य भाषा-भाषी बिलकुल अपरिचित हैं, और दूसरी वह जब लक्ष्य भाषा-भाषी उस चीज़ से परिचित हैं, यद्यपि उस उपमान के रूप मे उससे उनका परिचय नही है। पहली स्थिति में अनुवादक के आगे दो रास्ते हो सकते हैं। वह अलकार को छोडकर उसके भाव को ले ले। जैसे 'जाँघें कदली के खम्भे की तरह हैं' के स्थान पर 'जाँघें सुडौल, चिक्नी, लोमरहित, स्वच्छ तथा कान्तियुक्त हैं', या फिर वह जाँघो को कदली के खम्भे जैसा ही कहे और पाद-टिप्पणी मे या अन्यत्र यह समझा दे कि उस भाषा या साहित्य मे सुन्दर जाँघो की उपमा कदली-स्तम्भ से दी जाती है, क्योकि वह सुडौल, चिकना, लोमरहित, स्तम्भ होता है। दूसरी स्थिति मे बिना परिवर्तन के, या पाद-टिप्पणी आदि मे व्याख्या किये, अनुवादक उसका अनुवाद कर सकता है। जैसे 'चाँद-सा सुन्दर मुखडा' ऐसे भी लोगो के लिए सौन्दर्य-बोध करा देगा, जिनके साहित्य मे सौन्दर्य के लिए चांद

से उपमा देने की परम्परा नही है।

अनुवादक के सामने सबसे जटिल समस्या अन्तिम स्थिति में आती है, जब कोई उपमान स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों मे हो, किन्तु दोनों मे उसके द्वारा व्यक्त भाव या विचार असमान या विरोधी हो। उदाहरण के लिए 'उल्लू' हिन्दी में मूर्खता द्योतक उपमान है, जबकि अंग्रेजी में वह बुद्धिमता-द्योतक है। हिन्दी मे 'वह मूर्ख है' के लिए प्राय कहते हैं 'वह उल्लू है' जबकि अंग्रेजी में कहते हैं—वह उल्लू जैसा बुद्धिमान है (He is as wise as an owl या He is wise as an owl) अब यदि हिन्दी से कोई व्यक्ति अंग्रेजी मे या अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर रहा हो तो, क्या उस इस उपमान का स्रोत-भाषा के अर्थ में प्रयोग करना चाहिए। स्पष्ट ही ऐसा करना न केवल हास्यास्पद होगा अपितु वह भाव बोध में भी बाधक होगा। ऐसी स्थिति मे अनुवादक के सामने दो ही रास्ते हैं—या तो वह अलकार को छोडकर अनलकार द्वारा व्यक्त बात को सीधे शब्दो मे (जैसे वह बहुत बुद्धिमान है) कह दे, या फिर लक्ष्य भाषा मे उसी अर्थ मे जिस उपमान का प्रयोग होता हो, उसका प्रयोग करे।

हिन्दी में सौन्दर्य के लिए कामदेव से उपमा दी जाती है. 'वह कामदेव जैसा सुन्दर है।' मान लीजिए, इसका अनुवाद अंग्रेजी मे करना है। अंग्रेजी मे रोमियो का प्रेम-देवता 'क्यूपिड' कामदेव का पर्याय है, किन्तु वह कामदेव की तरह सौन्दर्य का उपमान नही है। पहले 'क्यूपिड' स्वरूप की दृष्टि से बडा ही भयावह माना जाता था अर्थात् कामदेव का ठीक उलट था। अब वह बालक रूप मे माना जाता है। इस प्रकार सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से अंग्रेजी मे उपमान-रूप में उस का प्रयोग बिल्कुल भी सार्थक नही है। ग्रीक पौराणिक कथा में अपोलो सूर्यदेवता हैं, जो काव्य, सगीत, औषधि तथा धनुर्विद्या आदि के अधिष्ठाता माने जाते हैं, और जो सुन्दर भी कहे जाते हैं। उन्हे कामदेव के स्थान पर रखा जा सकता है या फिर as hand some as a god भी कहने की परम्परा है, अत. उसका प्रयोग भी किया जा सकता है।

मान लीजिए, किसी की अत्यधिक कोमलता को लक्ष्य करके किसी ने कहा है, 'वह छुई मुई है। इसे अंग्रेजी मे उतारना है।'छुईमुई'की अंग्रेजी मे touch me-not' 'mosa' या 'Mimosa pudica कहते हैं। किन्तु इनमे किसी को भी कोमलता के प्रतीक के रूप में अंग्रेजी-परम्परा मे नही माना गया है। ऐसी स्थिति मे यदि अनुवादक इनमें किसी का प्रयोग करेगा तो अंग्रेजी पाठक तक उसका कथ्य नही पहुँच सकेगा। उसे शायद 'she is delicate as a flower' या इसी तरह कुछ कहना पडेगा।

पर समानता हो।

(ख) जब समानता न हो।

दोनो मे समानता कई प्रकार की हो सकती है। उदाहरणार्थ—(1) जिन अलकारो का प्रयोग स्रोत भाषा के साहित्य मे होता हो, उन्ही का प्रयोग लक्ष्य भाषा मे भी होता हो। (2) दोनो मे वे प्रयोग समान स्थितियो मे होते हो। (3) दोनो मे समान उपमानो का प्रयोग होता हो। (4) दोनो मे उपमान समान भाव व्यक्त करते हो।

यदि ये चारो समानताएँ हैं तो अनुवादक के सामने कोई जटिल समस्या नही आती। वह जैसे अन्य वाक्यो के अनुवाद करता है, उसी प्रकार अलकारयुक्त वाक्यो के भी कर देता है, और किसी प्रकार की कोई गडबडी नही होती। सस्कृत से हिन्दी मे अनुवाद करते समय इन समानताओ के कारण ही अनुवादक को अलकारो के अनुवादो मे कोई विशेष परेशानी प्राय नही होती। इन चारो मे यदि 1 तथा 2 मे समानता नही है या असमानता है तो भी विशेष परेशानी की बात नही है। लक्ष्य भाषा का पाठक अनुवाद को पढकर गुमराह नही होता और न उसकी रसानुभूति मे कोई विशेष व्यवधान उपस्थित होता है, या रसाभास की स्थिति आती है।

3 तथा 4 की असमानता अनुवादक के लिए टेढी खीर बन जाती है। मान लीजिए, स्रोत भाषा मे स्त्री की जघा की उपमा केले के चिकने स्तम्भ से दी गयी है, किन्तु लक्ष्य भाषा ऐसे क्षेत्र की है जहाँ केले होते ही नही, अत. उसके सौन्दर्य से वे लोग अपरिचित हैं, परिणामत उनकी भाषा मे स्रोत भाषा की उपमा का कोई विशेष अर्थ नही है। अनुवादक यदि उसका उसी रूप म अनुवाद कर दे तो वह उपमान लक्ष्य भाषा-भाषी को अपेक्षित सौन्दर्य-बोध नही करा सकता है।

वस्तुत: यहाँ भी स्थिति दो प्रकार की हो सकती है—एक तो वह जब स्रोत सामग्री मे प्रयुक्त उपमान से लक्ष्य भाषा-भाषी बिलकुल अपरिचित हैं, और दूसरी वह जब लक्ष्य भाषा-भाषी उस चीज से परिचित हैं, यद्यपि उस उपमान के रूप मे उससे उनका परिचय नही है। पहली स्थिति मे अनुवादक के आगे दो रास्ते हो सकते हैं। वह अलकार को छोडकर उसके भाव को ले ले। जैसे 'जाँघें कदली के खम्भे की तरह हैं' के स्थान पर 'जाँघें सुडौल, चिकनी, लोमरहित, स्वच्छ तथा कान्तियुक्त हैं', या फिर वह जाँघो को कदली के खम्भे जैसा ही कहे और पाद-टिप्पणी में या अन्यत्र यह समझा दे कि उस भाषा या साहित्य मे सुन्दर जाँघो की उपमा कदली-स्तम्भ से दी जाती है, क्योकि वह सुडौल, चिकना, लोमरहित, स्तम्भ होता है। दूसरी स्थिति मे बिना परिवर्तन के, या पाद टिप्पणी आदि मे व्याख्या किये, अनुवादक उसका अनुवाद कर सकता है। जैसे 'चाँद-सा सुन्दर मुखडा' ऐसे भी लोगो के लिए सौन्दर्य-बोध करा देगा, जिनके साहित्य मे सौन्दर्य के लिए चाँद

से उपमा देने की परम्परा नही है।

अनुवादक के सामने सबसे जटिल समस्या अन्तिम स्थिति मे आती है, जब कोई उपमान स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनो मे हो, किन्तु दोनो मे उसके द्वारा व्यक्त भाव या विचार असमान या विरोधी हो। उदाहरण के लिए 'उल्लू' हिन्दी में मूर्खता-द्योतक उपमान है, जबकि अंग्रेजी में वह बुद्धिमता-द्योतक है। हिन्दी में 'वह मूर्ख है' के लिए प्राय कहते हैं 'वह उल्लू है जबकि अंग्रेजी मे कहते हैं—वह उल्लू जैसा बुद्धिमान है (He is as wise as an owl या He is wise as an owl) अब यदि हिन्दी से कोई व्यक्ति अंग्रेजी मे या अंग्रेजी से हिन्दी मे अनुवाद कर रहा हो तो, क्या उसे इस उपमान का स्रोत-भाषा के अर्थ में प्रयोग करना चाहिए। स्पष्ट ही ऐसा करना न केवल हास्यास्पद होगा अपितु वह भाव बोध मे भी बाधक होगा। ऐसी स्थिति मे अनुवादक के सामने दो ही रास्ते हैं—या तो वह अलकार को छोडकर अलकार द्वारा व्यक्त बात को सीधे शब्दो मे (जैसे वह बहुत बुद्धिमान है) कह दे, या फिर लक्ष्य भाषा मे उसी अर्थ में जिस उपमान का प्रयोग होता हो, उसका प्रयोग करे।

हिन्दी में सौन्दर्य के लिए कामदेव से उपमा दी जाती है - 'वह कामदेव जैसा सुन्दर है।' मान लीजिए, इसका अनुवाद अंग्रेजी मे करना है। अंग्रेजी में रोमियो का प्रेम-देवता 'क्यूपिड' कामदेव का पर्याय है, किन्तु वह कामदेव की तरह सौन्दर्य का उपमान नही है। पहले 'क्यूपिड' स्वरूप की दृष्टि से बडा ही भयावह माना जाता था अर्थात् कामदेव का ठीक उलट था। अब वह बालक रूप मे माना जाता है। इस प्रकार सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से अंग्रेजी मे उपमान-रूप में उस का प्रयोग बिलकुल भी सार्थक नही है। ग्रीक पौराणिक कथा मे अपोलो सूर्यदेवता हैं, जो काव्य, सगीत, औषधि तथा धनुर्विद्या आदि के अधिष्ठाता माने जाते हैं, और जो सुन्दर भी कहे जाते हैं। उन्हें कामदेव के स्थान पर रखा जा सकता है या फिर as hand some as a god भी कहने की परम्परा है, अत उसका प्रयोग भी किया जा सकता है।

मान लीजिए, किसी की अत्यधिक कोमलता को लक्ष्य करके किसी ने कहा है, 'वह छुई मुई है। इसे अंग्रेजी में उतारना है।'छुईमुई'को अंग्रेजी में touch me-not' 'mosa' या 'Mimosa pudica कहते हैं। किन्तु इनमे किसी को भी कोमलता के प्रतीक के रूप में अंग्रेजी-परम्परा मे नहीं माना गया है। ऐसी स्थिति मे यदि अनुवादक इनमें किसी का प्रयोग करेगा तो अंग्रेजी पाठक तक उसका कथ्य नही पहुँच सकेगा। उसे शायद 'she is delicate as a flower' या इसी तरह कुछ कहना पड़ेगा।

नगीनचन्द सहगल

काव्यानुवाद : कठिनाइयाँ एवं सम्भावनाएँ

सम्पूर्ण वाङ्मय को स्थूल रूप से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है— ज्ञान-प्रधान साहित्य अथवा 'शास्त्र' और रस-प्रधान साहित्य अथवा 'काव्य'। 'शास्त्र' और 'काव्य' का अन्तर सक्षेप मे यह कहकर प्रकट किया जा सकता है कि मूलत तथ्यात्मक होने के कारण शास्त्र मे शास्त्रकार का अनुभव शब्दबद्ध होता है और भावात्मक होने के कारण काव्य मे काव्यकार की अनुभूति मुखरित होती है। शास्त्र मुख्यत मस्तिष्कजन्य होता है और काव्य हृदय प्रसूत। अतएव शास्त्र पाठक को उद्बोधित करता है और काव्य आनन्दित।

'शास्त्र' और 'काव्य' का यह अन्तर स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण अप्रासगिक न होगा। अपने-अपने अनुभव-अनुभूति के बल पर एक ही वर्ण्यविषय —बादल—का वर्णन शास्त्रकार भी करता है और काव्यकार भी। शास्त्रकार बादल का परिचय इस प्रकार देगा—

"बादल जल-बिन्दुओ का वह समूह है जो समुद्र, झील एवं नदियो के पानी से वाष्पन द्वारा उत्पन्न भाप के सघनन के कारण वायुमडल मे काफी ऊँचाई पर बन जाता है।"

इस परिभाषा से हमे पता लग जाता है कि बादल क्या होता है, उसे बनाने वाले तत्त्व कौन-से हैं और वह अपना बादल रूप किस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करता है। सक्षेप मे, बादल-विषयक ज्ञान के लिए जो जानकारी अभीष्ट है, वह हमे उक्त परिभाषा द्वारा प्राप्त हो जाती है। शास्त्रकार की सफलता की कसौटी भी यही है।

किन्तु काव्यकार केवल तथ्य का आलेखक नही होता। वह तथ्य को भाव का परिधान प्रदान करता है। अत शास्त्रकार द्वारा प्रस्तुत बादल की भाव परिभाषा कवि-कठ से इस रूप मे प्रस्फुटित होती है —

"धरती का जल सूख-सूखकर उड जाता है।
नभ मे जाकर वही 'जलद' पदवी पाता है॥"

यहाँ भी प्रक्रिया वही है जिसका उल्लेख शास्त्रकार किया करता है। कवि की उक्ति में 'वाष्पन' के स्थान पर 'सूख-सूखकर उड़ना है', 'समुद्र, झील एवं नदियों के पानी' के स्थान पर 'धरती का जल' है और 'वायुमंडल की काफी ऊँचाई' 'नभ' द्वारा अभिव्यक्त कर दी गयी है। किन्तु यहाँ इस स्थूल तथ्य से अधिक भी कुछ है और यही 'कुछ' उस उक्ति का प्राणतत्त्व है, काव्यकार की देन है, उसकी कृति का रस है।

वह प्राणतत्त्व क्या है ? बादल के प्रस्तुत चित्र द्वारा कवि मानो मानव-जीवन में साधना अथवा तपस्या का महत्त्व प्रतिपादित कर रहा है। सूर्य की प्रखर रश्मियों के ताप से सूख-सूखकर ऊपर उठने पर ही 'धरती' का जल 'आकाश' —उच्चतम स्थिति—तक पहुँचता है। इतना ही नहीं, स्वयं 'जलद' बन जाता है। साधना द्वारा मनुष्य उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है। कवि बादल का परिचय देने के बहाने यह संदेश भी दे रहा है। हमें पूर्ण सफलता के लक्ष्य तक पहुँचाने वाली अनेक सीढ़ियाँ हैं और श्रममूलक प्रयास ही स्थायी प्रगति अथवा गौरवपूर्ण सफलता का मूलाधार है।

काव्य-पथ पर अगला कदम उठाने पर बादल का एक नया चित्र हमारे सामने आता है—

हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल-फेन, उषा के पल्लव,
वारि-वसन, वसुधा के मूल
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर
सलिल-भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल
दिन के तम, पावक के तूल—

शास्त्रकार के शब्द-उपकरण—सागर, जल, धूम, गगन, अनिल आदि—यहाँ भी विद्यमान हैं, किन्तु समग्र चित्र सर्वथा स्वतन्त्र और नवीन है। काव्य की यह नवीनता ही उसे शास्त्र से अलग करती है और यही विशेषता काव्य के अनुवाद में, शास्त्र के अनुवाद से भिन्न, कुछ विशिष्ट कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती है।

तथ्य-प्रधान होने के कारण शास्त्र के अनुवाद की अधिकतर समस्याओं का समाधान दो बातों के आधार पर हो जाता है—(1) प्रस्तुत विषय का, और (2) सम्बन्धित दोनों भाषाओं का सम्यक् ज्ञान। काव्यानुवाद के क्षेत्र में समस्याएँ इतनी सरल नहीं। सामान्यतः सामने आने वाली अनेक कठिनाइयों के अतिरिक्त काव्य के दोनों मुख्य रूपों—गद्य तथा पद्य और उन दोनों की विविध विधाओं—प्रबंध-काव्य, गीति-काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के अनुवाद

की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं, जिनका सामना प्रत्येक अनुवादक को करना पडता है। सामान्यत कहा जा सकता है कि पद्यात्मक साहित्य अथवा कविता की अपेक्षा गद्यात्मक साहित्य का अनुवाद सहज होता है। इस दृष्टि से पद्यानुवाद को काव्यानुवाद की कसौटी भी जाना जा सकता है।

वस्तुत पद्यानुवाद की कठिनाइयाँ इतनी अधिक एव प्रत्यक्ष हैं कि उन्होने यदि एक ओर इस कार्य को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है, तो दूसरी ओर इसे अत्यन्त विवादास्पद भी बना दिया है। फलत अनेक चिन्तको ने स्पष्ट शब्दों मे घोषित कर दिया है कि उत्कृष्ट स्तर वाले साहित्यिक पुराग्रन्थो का अनुवाद मूल की कला और सौन्दर्य को उपयुक्त रूप मे अक्षुण्ण रखते हुए, एव भाषा से दूसरी भाषा मे कर सकना असम्भव है। इस सम्बन्ध मे प्राय अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये जाते हैं—क्या किन्हीं दो शब्दो का अर्थ पूर्णत समान होना या हो सकता है? किसी कविता मे अभिव्यक्त विचार को एक भाषा मे दूसरी भाषा मे रूपान्तरित मात्र कर देने से क्या अनुवादक का कार्य पूरा हो जाता है? स्वय विचारो को उन शब्दो स कहाँ तक पृथक् किया जा सकता है जिनमे वे पिरोये हुए होते हैं? आदि, आदि।

इस प्रकार के प्रश्नो के आधार पर प्राय यह कहा जाता है कि गद्य-साहित्य का अनुवाद भले ही सम्भव हो, किन्तु कविता का अनुवाद तो सर्वथा असम्भव बात है। अनूद्यता[1] की दृष्टि से गद्य और पद्य के अन्तर का कारण यह माना जा सकता है कि गद्य मे भाषा का प्रयोग कुछ इस प्रकार किया जाता है कि उसमे निहित विचारो, घटनाओ आदि को उसमे अलग करके उन्हे दूसरी भाषाओ मे व्यक्त किया जा सकता है किन्तु कविता मे शब्द का उसकी अर्थवत्ता के साथ ऐसा अभिन्न सम्बन्ध होता है—शब्द और अर्थ इतने एकाकार होते हैं—कि उन्हे पृथक् नही किया जा सकता।

इस विचारधारा के समर्थन मे कुछ अन्य तर्क सक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

काव्य कला अन्तत उन शब्दो पर निर्भर होती है जिनके द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है और यहाँ शब्द केवल अर्थ का भारवाहक नही होता, उसकी अपने-आपमे भी कुछ सत्ता महत्ता होती है, उसकी अपनी ध्वनि होती है, अपना सगीत होता है, अपना विशिष्ट सस्कार, परिवेश, इतिहास और रूपवैभव होता है। दूसरे शब्दो में, काव्य में शब्द का माहात्म्य केवल उसके अर्थतत्त्व के कारण नही, ध्वनि, सगीत, अर्थ भाव और रस—सभी तत्त्वो के कारण होता है। उदाहरणार्थ, "अली भौंर गूँजन लगे होन लगे दल पात" के स्थान पर "सखी भ्रमर गुजित हुए गिर गिर

1 Translatability

पात पडंत" लिख देने से इस उक्ति के सामान्य अर्थ की प्रतीति भले ही हो जाती हो, काव्य के वास्तविक प्रयोजन—रस निष्पत्ति की सिद्धि उसी अनुपात में नही हो पाती । इसीलिए प्राय: कहा जाता है कि कविता का अर्थ उसमे प्रयुक्त शब्दो के अर्थों का योगमात्र नही होता, कविता का अर्थ स्वयं कविता है। ऐसी स्थिति मे किसी एक भाषा के किन्ही दो शब्दो अथवा किन्ही दो भाषाओ के दो पर्यायवाची शब्दो को पूर्ण पर्याय नही माना जा सकता—ठीक उसी प्रकार, जैसे किसी एक वृक्ष के दो पत्तो को पूर्ण प्रतिरूप सिद्ध नही किया जा सकता । और पूर्ण पर्यायो के बिना अनुवाद कैसे हो सकता है ?

काव्यानुवाद के सम्बन्ध में अभिव्यक्त इस सैद्धान्तिक असभाव्यता की उपस्थिति मे भी विश्व के सभी भागो और सभी भाषाओ मे काव्यानुवाद का कार्य अनवरत रूप से होता रहा है। इतना ही नही, काव्यानुवादको का महत्त्व दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा है। केवल पुस्तकालयो मे ही अनुवादो को मूल कृतियो के समकक्ष स्थान नही प्रदान किया जाने लगा है, विश्व के प्राय: सभी देशो के प्रसारण-कार्यक्रमो आदि मे भी अनुवादो तथा रूपातरो आदि को अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। वस्तुत. अब तो विभिन्न भाषाओ मे काव्यानुवाद का परिमाण इतना अधिक हो चुका है कि उसके आधार पर काव्यानुवाद-परम्परा का एक वृहद् इतिहास लिखा जा सकता है तथा एक सर्वांग-पूर्ण अनुवाद-शास्त्र की रचना भी संभव हो गयी है।

इस परस्पर-विरोधी स्थिति का कारण क्या है ? यदि काव्यानुवाद असम्भव है, तो विभिन्न देशो तथा भाषाओं मे उसकी सुदीर्घ तथा अनवरत परम्परा आज भी अविच्छिन्न क्यो है और यदि काव्यानुवाद निरन्तर साहित्य के अध्येताओ को उल्लसित-आनदित करते रहे हैं, तो काव्यानुवाद-कार्य असम्भव अथवा निरर्थक कैसे मान लिया जाये ? वास्तव में इस विरोधाभास का मूल कारण यह है कि साहित्य-जगत् के कुछ नीम-हकीमो ने 'स्वस्थ' काव्यानुवाद के कुछ विशेष लक्षण निर्धारित कर लिए हैं और उन्ही लक्षणो अथवा पूर्वाग्रहो के आधार पर काव्यानुवाद को 'शव' अथवा 'शिव' घोषित करने की भ्रामक परिपाटी चल पडी है।

इस प्रकार के कुछ पूर्वाग्रह निम्नलिखित हैं :

1. शब्दविषयक आग्रह—कोई भी अनुवाद सामने आने पर ये महानुभाव सबसे पहले मूल से उसका मिलान करके यह पता लगाते है कि मूल के किस-किस शब्द अथवा वाक्यांश को अनुवाद मे छोड दिया गया है और अनुवाद का कौन-कौन-सा शब्द अनुवादक ने अपनी ओर से जोडा है। यदि ऐसे कुछ शब्द भी मिल जाते हैं तो उनकी दृष्टि मे अनुवाद 'पापकर्म' बन जाता है और अनुवादक 'प्रवंचक ।'

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, काव्य में शब्द, शास्त्र की भाँति केवल अर्थ

सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी

काव्यानुवाद : सरसता और प्रभावोत्पादकता

मानव-जाति की चिन्तन-एकता को सजीव रूप देने में अनुवादों का अपरिहार्य योगदान है। महान साहित्य, काव्य, दर्शन, विज्ञान या चिन्तन के अन्य किसी उदात्त रूप को जन्म देना किसी एक देश या संस्कृति का दायित्व नहीं बन सकता। ज्ञान अपने प्रकृत रूप में विश्वव्यापी और सर्वग्राह्य है और अपने इसी रूप में वह समादृत हो सकता है या श्रेष्ठ माना जा सकता है। सभ्यता के आरम्भ से, उच्च विचारों के चिन्तक अपने विपुल प्रतिभा-कोष से अमूल्य उपलब्धियों का वरदान हमें देते आये हैं। यह ज्ञान कुछ तो सुरक्षित रह गया है, पर बहुत कुछ सभ्यताओं और कालक्रम के उलट-फेर और वात्याचक्र में विलीन हो चुका है। अतएव, आवश्यकता है कि ज्ञान का सर्वव्यापी रूप, मानव के विकास और उसकी सत्ता की स्थिति की दृष्टि से, चिरकाल तक सुरक्षित रखा जाये।

चिन्तन के प्रस्तुतीकरण के लिए उपयुक्त भाषा की आवश्यकता होती है, नहीं तो मूर्त रूप ग्रहण करने से पूर्व ही वह किसी विचारक के मस्तिष्क के गिरि-गह्वरों में प्रसुप्त रह जाये। यह भाषा का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। साहित्यकार या चिन्तक की अपनी समस्या होती है कि इसके पूर्व कि उसकी अनुभूति उसकी पकड़ से निकल जाये, वह उसे अपने कृतित्व का अंग बना ले—उसे मूर्त रूप प्रदान कर दे। वह ऐसा बहुधा अपनी मातृभाषा में या किसी अन्य भाषा में, जिस पर उसका समुचित अधिकार हो, करने का यत्न करता है।

चिन्तन को मूर्त रूप देने के पश्चात् प्रश्न आ खड़ा होता है उसे सर्वव्यापी बनाने का। उच्च विचारों की संसृष्टि एक ही भाषा—कलाकार या लेखक की भाषा—तक ही सीमित रह गयी तो सम्पूर्ण मानव-जाति उससे कैसे लाभ उठा सकती है? यह और बात है कि हर भाषा में ऐसे लिखने वाले पैदा हों जो समान विचारों को उस भाषा के सीमित जन-समुदाय तक पहुँचाएँ। आदर्श स्थिति तो

वह होगी जब एक भाषा मे प्रस्तुत साहित्य या चिन्तन, या उसकी स्वस्थ अनुकृति, ससार की समस्त भाषाओ मे रूपान्तरित हो सके। उसी अवस्था मे यह भी सम्भव होगा कि मानव अपनी सकीर्ण सत्ता से निकलकर यह अनुभव करे कि उसके समानधर्मी (अभिप्राय 'धर्म' से नही है) स्वरूपधारी किस प्रकार एक ही ढग से सोचते और प्रतिक्रिया करते हैं।

आज के युग मे जब हजारो योजनो की दूरियाँ कुछ घण्टो मे सिमट गयी हैं और जब मानव-सभ्यता अपना एक सर्वांगीण रूप प्रचलित करने के लिए प्रयत्नशील है यह विचारणीय है कि कैसे एकता की बनती हुई यह शृखला एक स्थायी रूप धारण कर सके जिसका सम्बन्ध मानव-चिन्तन से हो। यह कार्य जितना ही शोभन और श्लाघ्य है, उतना ही उत्तरदायित्वपूर्ण, श्रमसाध्य और दुस्तर। एक भाषा के समस्त चिन्तन को, उसके समस्त उद्वेगों और बारीकियो के साथ, किसी अन्य भाषा के सहज रूप मे प्रस्तुत करना सरल कार्य नही। इस महान दायित्व को समझकर प्रस्तुत किया हुआ अनुवाद ही श्रेष्ठ माना जायेगा। जो लोग भाषाओ के सीमित ज्ञान के बल पर अनुवाद प्रस्तुत करने की धृष्टता करते हैं, वे वाङ्मय को दूषित करने मे ही सफल हो पाते हैं, क्योकि उनका अनुवाद छप भले ही जाये, हलका और घटिया होगा।

यहाँ काव्यानुवाद की समस्या पर कुछ विस्तार से विचार करना ठीक रहेगा। कवि की अपनी उद्भावनाएँ और अनुभूतियाँ होती हैं, जिन्हें वह भाषा मे बाँधने का प्रयत्न करता है। उस भाषा विशेष की भी कुछ विशेषताएँ और सम्भावनाएँ होती हैं जिनकी परिधि में कवि की अनुभूतियाँ आबद्ध होती हैं। अतएव किसी कविता का अपनी भाषा मे अनुवाद प्रस्तुत करने के इच्छुक व्यक्ति का यह स्वाभाविक कर्त्तव्य होना चाहिए कि एक तो वह उस कविता की गहराइयो और बारीकियो को ठीक तरह से समझे जिससे उस भाषा के पढनेवाले किसी अन्य भाषा में लिखे साहित्य का आनन्द उठा सकें और दूसरे जिस भाषा मे वह कविता लिखी गयी है न केवल उसका अच्छा ज्ञान ही प्राप्त करे, बल्कि उसके सस्कारो और शब्द रचना इत्यादि से भी पूर्णरूपेण परिचित हो।

कवि की कविता का अनुवाद प्रस्तुत करने के पूर्व उसकी अन्तरग भावनाओ, मानसिक स्थितियो एव उसकी समस्त साधना के स्वरूप का पूरा पूरा साक्षात्कार होना आवश्यक है। कवि की एक नैसर्गिक विकलता होती है, जिसे यदि अनुवादक अपनी अनुभूति मे नही पकड सके तो उसका सारा प्रयत्न एक साधारण मानसिक व्यायाम बनकर रह जायेगा। अनुवादक अपने को कवि की भावभूमि पर खडा कर उसके मनोभावो के अन्तस्तल मे प्रवेश करता है, जिससे अभिव्यजन का विशुद्ध रूप में दर्शन कर सके। वह कवि की भावनाओं मे प्रवेश कर उन्हें अपने अन्तर मे उतारता है और अपने को उनके अनुरूप बनाता है। यदि अनुवादक मे इतनी

सामर्थ्य नहीं है कि वह यह सब कर सके, तो उसे किसी कविता का अनुवाद प्रस्तुत करने का विचार छोड़ देना चाहिए।

किसी कविता का अनुवाद प्रस्तुत करनेवाले अथवा करने के इच्छुक व्यक्ति को स्वयं कवि होना चाहिए या उसमें कवि की कोमल, निर्मल भावनाओं और संवेगों को आँकने-पहचानने की क्षमता होनी चाहिए। योग्य अनुवादक की दृष्टि व्यापक, पैनी और संवेदनशील होती है, अन्यथा वह कवि के भाव-निरूपण की प्रक्रिया का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करने में समर्थ नहीं हो सकता। सफल अनुवादक यह कभी नहीं भूल सकता कि जिन पाठकों के लिए वह अपना अनुवाद पेश कर रहा है, वे उसके माध्यम से मूल कविता और उसके प्रणेता का रूप निहारने-निरखने का प्रयत्न करेंगे। यदि अनुवादक ने पाठक और कवि के बीच यह तादात्म्य एवं घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दिया तो उसने अपनी जिम्मेवारी पूरी तौर से निभा दी। पाठक, बाद में, रसास्वादन के उपरान्त अपनी पूर्व मन स्थिति, में लौटकर, अनुवादक का आभार अवश्य स्वीकार करेगा।

जहाँ तक भाषा-ज्ञान का सम्बन्ध है, उसका होना उतना ही जरूरी है जितना काव्य-रसास्वादन की बुद्धि और संवेदनशील व्यक्तित्व का होना। प्रत्येक भाषा का अपना इतिहास, अपने संस्कार और अपनी शब्दावली, मुहावरे तथा सम्भावनाएँ होती हैं। इसलिए, जब तक अनुवादक अपनी मातृभाषा के विशिष्ट ज्ञान के अतिरिक्त कवि की भाषा पर भी लगभग उतना ही अधिकार न रखता हो, तब तक वह अपने दायित्व का पूरा-पूरा निर्वाह नहीं कर पायेगा।

अनुवादक यह जानता है कि कवि की भाषा उसकी अपनी भाषा नहीं है (अपनी भाषा में अन्य भाषा में अनुवाद का प्रश्न पृथक् है), फिर भी वह उसकी कविता से इतना अभिभूत हुआ है और रसास्वादन के आनन्द से विभोर हो उठा है कि उसकी अन्त प्रेरणा उसे उस कविता से सान्निध्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करती है। जब अनुवादक का मन इस प्रकार उद्वेलित हो उठे, तब उसे यह समझना चाहिए कि वह अपनी प्रिय कविता का अनुवाद प्रस्तुत करने की स्थिति में है। इस स्थिति में पहुँचने के बावजूद वह अपनी सीमाओं में आबद्ध होता है। ये सीमाएँ विशेष रूप से भाषापरक (कवि की भाषा) होती हैं। अनुवादक उसकी कविता की महत्ता, विचार-सौष्ठव, औदात्य तथा शब्द-चयन के सौन्दर्य पर मुग्ध होता है। मन स्थिति की दृष्टि से यद्यपि उसमें और कवि में कोई तात्त्विक असमानता नहीं होती, तथापि उस विभोरावस्था में उसकी समस्या होती है, समस्त अनुभूत सत्य को अपनी भाषा की उपयुक्त शब्दावली में प्रस्तुत करने की। मूल कवि की भाषा का समुचित ज्ञान रखने वाला एक समर्थ अनुवादक मूल शब्द-राशि, काव्योत्कर्ष की सम्भावनाओं, मुहावरों, कवियों के उन्माद-उच्छ्वास और उसके आनन्दातिरेक को अपनी भाषा की सहज सौन्दर्यानुभूति में आबद्ध

करने में सफल होता है।

एक भाषा के काव्य माधुर्य, उद्वेग और उल्लास तथा रचना चातुर्य-चमत्कार को दूसरी भाषा में कुशलतापूर्वक सँजोने-आँकने की यह प्रक्रिया कृति-विशेष के पुनर्निर्माण या पुनर्जन्म के समान है। एक सफल अनुवाद की सबसे सरल परीक्षा यह है कि वह अनुवाद होते हुए भी मौलिक काव्य-रचना के सौष्ठव, शृंगार और उदात्त तत्त्व से सवेष्टित हो। एक सिद्धहस्त अनुवादकर्ता का विशाल ज्ञान और उसकी परिमार्जित और परिपक्व रचना-शैली उसके साहित्यिक प्रयत्न को अपने-आप में महान कहलाने की क्षमता प्रदान करते हैं।

अनुवाद की कला का एक विशिष्ट पक्ष यह है कि उच्च साहित्यिक अनुवाद केवल सीधा अनुवाद नहीं होता, वह मूल कृति की आत्मा का सफल प्रत्यक्षीकरण होता है जिसके लिए यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक शब्द के लिए शब्द की स्थापना हो और मूल कविता की प्रत्येक पंक्ति अनूदित रूप में देखी जा सके। काव्यानुवाद में इसका ध्यान रखना पड़ता है कि प्रस्तुत रूपान्तर भाषानुवाद न हो जाये, वह भावानुवाद या छायानुवाद हो सकता है। सबसे अच्छा तो यह होगा कि वह अनुवाद प्रतीत ही न हो, पर उसके रसास्वादन के अनन्तर यदि पाठक मूल कृति पढ़े तो उसके मन में समान रूप से रसोद्रेक हो और वह दोनों रचनाओं की मिलती-जुलती भावभूमि और उनके प्रेरणा-स्रोत का दर्शन कर सके।

काव्यानुवाद में सबसे मुख्य बात होती है कवि की अन्तरात्मा में प्रवेश कर उसकी विशुद्ध अनुभूति और जीवन-निर्मित कल्पना-स्रोत के साथ सामंजस्य स्थापित करना। यदि अनुवादक ने यह मौलिक सामंजस्य स्थापित कर कवि की दार्शनिकता और वैयक्तिक काव्य-रचना का अपने हृदय में ठीक-ठीक अंकन किया है, तो उसकी अपनी कृति इस अलौकिक सत्य को निश्चय ही परिलक्षित करेगी। कवि के काव्य की निश्छलता, सत्यता, जागरूकता, प्रौढ़ता, प्रवाहमयता, लयात्मकता, उसकी उदात्त भावना और उसका स्पन्दन—सब कुछ की छाया अनुवाद में दृष्टिगोचर होनी चाहिए। काव्यानुवाद मूल कृति का स्पन्दनशील प्रतिरूप या प्रतिमूर्त्ति है, उसका प्रतिवाद नहीं। सत्य की छाया या नक्ल भी सत्य-पक्षी होगी, सत्य-विरोधी नहीं। काव्य और उसके अनुवाद में भी यही स्वस्थ, हार्दिक सम्बन्ध अपेक्षित है।

महान् काव्य अपनी सामर्थ्य में अटूट, शाश्वत और सीमाहीन है। अच्छी, रुचिकर और पारलौकिक आनन्द प्रदान करनेवाली कविता को मनुष्य-समुदाय सदैव जी-जान से रक्षा करता आया है। समय की शिला पर उसकी प्रखरता, उसकी शक्ति और सामर्थ्य पल्लवित और विकसित होते हैं। उसी प्रकार महान् काव्य का महान् रूपान्तर भी, चाहे वह जिस भाषा में हो, मनुष्य के इतिहास पर अमिट छाप छोड़ जाता है। इसलिए अनुवादक को समाज के प्रति अपने गम्भीर

दायित्व का अनुभव करना चाहिए, और किसी रचना का अनुवाद प्रस्तुत करने में उन सारी *मान्यताओं-मर्यादाओं* को दृष्टि मे रखना चाहिए जो भविष्य के साहित्य सृजन और विकास से सम्बद्ध हैं।

यदि अनुवादक स्वय कवि है और अपनी कविता किसी अन्य भाषा के माध्यम से भी, जिस पर वह अपना यथेष्ट अधिकार मानता है, प्रस्तुत करना चाहता है, तो उसकी समस्या उस अनुवादक की तुलना मे नगण्य या छोटी मानी जायेगी, जो *किसी अन्य भाषा की कविता अपनी भाषा मे रूपान्तरित करता है। भ्रान्ति का* भय केवल अनुवाद की उस अवस्था मे ही सकता है जब कवि-अनुवादक अपने ही अनुभूत भावो के लिए किसी इतर भाषा मे उचित मार्मिक शब्दावली न पकड पाये।

प्रश्न हो सकता है कि अनुवादक को स्रष्टा मानना कहाँ तक औचित्य के सन्निकट है ? एक योग्य अनुवादक उसी मात्रा मे सर्जक भी है, जिसमें कि कोई स्वतन्त्र रचनाकार या लेखक। ऐसा भी देखा गया है कि अनुवादक की कृति मूल रचना से अधिक उत्कर्षशील और मनोहारी बन जाती है। ऐसा तभी सम्भव है जब एक तेजस्वी अनुवादक अपनी योग्य दृष्टि, विशाल अनुभूति तथा रचना-चातुर्य से एक उच्चतर कृति प्रस्तुत करने मे सफल हो जो अपनी रंजनात्मकता और मनोरम प्रयोगो के कारण मूल रचना से भी अधिक हृदयग्राही बन पडे।

गम्भीरता से विचार किया जाये तो अनुवाद भी एक सुरुचिपूर्ण कला है और अनुवादक एक कुशल कलाकार। ससार के कुछ बडे-से-बडे लेखको ने भी अनुवाद मे हाथ आजमाया है और उच्चकोटि के अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। अतएव, अनुवादक को भी लेखक और कलाकार की श्रेणी मे ही गिनना पडेगा और, इस दृष्टि से, वह भी उतना ही स्रष्टा माना जायेगा जितना कोई अन्य लेखक। वह निश्चय ही कोई बडा कवि या लेखक होगा जिसने अनुवाद के क्षेत्र मे भी कलात्मक रुचि का परिचय दिया हो।

एक दूसरा सवाल हो सकता है कि क्या कविता का अनुवाद काव्य-गुण-सम्पन्न होने के साथ सगीत-तत्त्व से भी परिपूर्ण हो ? कविता की अपनी ध्वनि, अपना सयम और अपना विधान होता है, और उसकी सम्पूर्ण कल्पना इसी सन्दर्भ मे ग्राह्य है। काव्य की ध्वनि एव शैली लयात्मक है और उसके अनुवाद मे भी गुणी अनुवादक यह तत्त्व समाविष्ट करता है। हम ऐसा नही मानते कि काव्य का कौशल केवल पद्यात्मक होने मे ही निखरता है, प्रत्युत गद्यात्मक कविता मे भी एक विशेष लय होती है। पद्यात्मकता लाने मे व्यर्थ प्रयास से बहुधा अनुवाद का मूल स्रोत मग हो जाता है और ऐसे परिश्रम के पश्चात् जो कृति सामने आती है, वह सस्ती, प्राणहीन और काव्योल्लास से विहीन होती है।

प्रत्येक अनुवादक की अपनी प्रतिभा और अपनी सूझ-बूझ होती है जिसका

आरोप मूल काव्य पर होता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप एक नवीन कृति जन्म ग्रहण करती है, जिसे अपने-आपमें आर्ष वचन की भाँति निरपेक्ष, निर्विकल्प अथवा 'ऐबसोल्यूट' (अन्तिम सत्य) नही मानना चाहिए। प्रत्येक कृति पर अनुवादक के व्यक्तित्व की छाप और उसकी अपनी पहुँच का आत्मलक्षी तत्त्व विद्यमान होगा। यद्यपि यह अनिवार्य है, तथापि अनुवादक को इसका ध्यान रखना पड़ता है कि दो व्यक्तित्वो के समन्वय मे उसका अपना अंश इस हद तक न प्रधान हो उठे कि मूल प्रणेता का पक्ष कमजोर या गौण दिखाई पडे। अनुवादक की कृति अपने-आप मे एक पूर्ण रचना अवश्य है, किन्तु वह स्वतन्त्र सत्ता नही होती क्योंकि उसकी प्रेरणा का स्रोत अन्यत्र है। अनुवाद और मूल कविता के बीच यही सम्बन्ध शोभनीय और कलानुगत है।

अन्त मे यह कहना उचित होगा कि अनुवाद साहित्य-साधना का एक विशिष्ट अंग है और उसके लिए एक विशेष प्रतिभा की अनिवार्यता अपेक्षित है। काव्यानुवाद के लिए तो और भी काव्य-सुलभ योग्यताएँ आवश्यक होती हैं। एक सफल अनुवाद मे पाठक की कल्पना-शक्ति और भावावेश को उद्वेलित करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। किसी अनूठे काव्य के अनुवाद मे उसका मूल सन्देश या लक्षित अर्थ, उसका भावातिरेक, सुरीलापन (गद्यात्मक हो अथवा पद्यबद्ध), एक शब्द में उसकी आत्मा का रसमय दिग्दर्शन—यह सब एक साथ प्राप्य है। अनुवादक और मूल काव्य के रचयिता के बीच एक अतीन्द्रिय, अगोचर सौहार्द और अनुराग का सम्बन्ध स्थापित होता है और उनके इस पारस्परिक तादात्म्य और समझौते के फलस्वरूप जो नवीन रचना रूप ग्रहण करती है उसमे पुरानी की आवाज़ स्पष्ट सुनायी पडती है। साहित्य-सृजन के क्षेत्र में इस व्यापार का अलौकिक महत्त्व है। *अतएव, अनुवादा की परम्परा को सुदृढ रूप प्रदान करना चाहिए।* अनुवादक-साहित्यकार उच्चस्तरीय रचनाएँ ही प्रस्तुत करें, यह इस परम्परा की प्रौढता और परिमार्जना की दृष्टि से असदिग्ध रूप मे अपेक्षित है।

सुरेन्द्रकुमार दीक्षित

विदेशी कविताओं के हिन्दी अनुवाद

विदेशी कविताओं के अनेक हिन्दी अनुवाद समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। इन अनुवादो के प्रस्तुतकर्ता अधिकांशत कवि हैं—जैसे यहाँ के आलोचकों और विद्वानो को अनुवाद-जैसे छोटे काम के लिए फुर्सत ही न हो। इनके विपरीत विदेशो में विद्वानों ने अपना सारा जीवन दूसरी भाषाओं को सीखने और उनके साहित्य को अपनी भाषा मे पूरी ईमानदारी से उपलब्ध कराने मे बिताया। आर्थर वैली, सी० एम० बोवरा, गिलबर्ट मरे, जे० एम० कोहेन आदि के नाम इसी कारण उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध कवि एज़रा पाउण्ड ने चीनी कविता के कितने ही प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किये और बोरिस पास्तरनाक (जिनकी रचनाओं का अनुवाद करने का अब हिन्दी मे फैशन चल पड़ा है) ने शेक्सपियर का रूसी अनुवाद कर ख्याति अर्जित की थी। किन्तु हिन्दी के विद्वान अनुवाद करना एक हीन साहित्यिक कर्म समझते हैं—मेरे एक कवि-मित्र ने मुझसे कहा था कि जब कवि के पास अपना कुछ कहने को नहीं होता तभी वह अनुवाद करता है। कुछ तो अनुवाद को रचनात्मक साहित्य ही नही मानते और कुछ उसे निम्न कोटि के साहित्य मे परिगणित करते हैं (चाहे वह विदेशी भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार की रचना ही क्यो न हो)। परिणामस्वरूप एक ओर तो अनुवादको को उपेक्षा मिलती है और दूसरी ओर तरह-तरह के मनमाने और अप्रामाणिक अनुवाद बेरोकटोक प्रकाशित होते रहते हैं। विद्वानो के तिरस्कार, और साधारण पाठक को मूल रचना उपलब्ध न होने की विवशता, का लाभ उठाकर अंग्रेज़ी भाषा का अधकचरा ज्ञान रखने वाला कोई भी लेखक हिन्दी में अनुवादक होने का दम्भ कर सकता है और जब साहित्यकार को स्वतन्त्रता है तब उसे अनुवादो मे मूल-रचना के साथ बलात्कार करने से कौन रोक सकता है! अनुवादको को यह कैफियत देने की क्या आवश्यकता है कि उन्होंने जो भी परिवर्तन किये हैं वह कौन-सा विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिए या तुक, छन्द अथवा 'लय को निभाने की

कौन-सी विवशता के कारण ? हिंदी के पाठकों को अपने बहुभाषा-ज्ञान से आतंकित कर सकने के प्रयास में वह अकसर इसका भी उल्लेख नहीं करते कि उनके अनुवाद अंग्रेज़ी अनुवादों पर आधारित हैं। इस प्रकार मूल अंग्रेज़ी अनुवादों के मनमाने अनुवाद, हिन्दी में प्रामाणिक अनुवाद के नाम पर, चलाये जा रहे हैं।

विदेशी कविताओं के कितने ही अनुवाद 'प्रतीक', 'कल्पना', 'युगचेतना', 'कृति', 'धर्मयुग', 'ज्ञानोदय' आदि पत्रों में प्रकाशित हुए हैं लेकिन जहाँ तक मुझे ज्ञात है इन्हें प्रकाशित करने से पहले अधिकांश सम्पादकों ने अनुवादकों से मूल रचना नहीं माँगी। इसके पीछे सम्पादकों का विदेशी साहित्य का अल्पज्ञान है या अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा (हिन्दी में तो सभी कुछ चल सकता है!), या अनुवादकों पर अखंड विश्वास—कहा नहीं जा सकता! जो भी हो, यदि अनुवादों के साथ-साथ मूल अंग्रेज़ी रचना भी प्रकाशित हो तो पाठक को भी अनुवाद की अच्छाइयाँ जाँचने-परखने का अवसर मिल सकेगा। केवल सम्पादक की रुचि या लेखकों के बड़े नाम ही नहीं, अनुवाद की प्रामाणिकता भी उसके प्रकाशन के समय अवश्य देखी जानी चाहिए।

अनुवाद की समस्याओं को समझने के लिए हम पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ अनुवादों पर विचार करेंगे। इन उदाहरणों को लेने का यह आशय कदापि नहीं कि यही उन अनुवादकों की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं, या इनसे अच्छे और अनुवाद उन्होंने किये ही नहीं। मैंने यहाँ केवल वे ही रचनाएँ ली हैं जिनका अंग्रेज़ी में प्रामाणिक अनुवाद मुझे मिल सका।

पहले हम 'प्रतीक' में प्रकाशित कुँअर नारायण द्वारा अनूदित मलार्मे की कविताएँ लें। मलार्मे जैसे अन-अनुवाद्य (Untranslatable) कवि को हिन्दी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लिए कुँअर नारायण बधाई के पात्र हैं किन्तु उन्होंने भी अनुवाद में मनमानी की है। एक कविता है 'रूप-छल'—

Apparition

"The moon was saddening Seraphim in tears
Dreaming, bow in hand, in the calm of vaporous
Flowers, were drawing from dying violins
White sobs gliding down blue corollas
,. It was the blessed day of your first kiss
My dreaming loving to torment me
Was drinking deep the perfume of sadness
That even without regret and deception is left
By the gathering of a dream in the heart which has
gathered it"

अनुवाद—

रूप-छल

तुम्हारे प्रथम चुम्बन का वरद दिन था।
चाँद उदास हो रहा था
सुमनों की लहकती बास के बीच
सपनों में डूबी सजल परियाँ,
जिनकी सिसकियाँ सितार की वन्द मोड़-सी
फूलों के सम्पुट में विछल पड़ती थी।
मेरे स्वप्न—
मेरी यातना के स्रोत—
उस भीनी उदासी में विसुध थे
जिसे सपनों की छबीली भीड़
अकारण ही उजाड़कर,
हृदय में छोड़ जाती है।

मूल कविता में जो पाँचवी पंक्ति है अनुवाद में वही पहली हो जाती है। पता नहीं, अनुवादक ने यह परिवर्तन करना क्यों उचित समझा? मुझे तो लगता है कि ऐसा करने से प्रभाव (emphasis) बिल्कुल बदल दिया गया है—मूल में जहाँ पहले वातावरण का चित्र उपस्थित करके उसके कारण-रूप में कवि अपने व्यक्तिगत अनुभव को प्रेषित करता है, वहाँ अनुवाद में वह कारण प्रथम पंक्ति में ही उद्घाटित हो जाता है। इस प्रकार चाहे कुँअर नारायण कविता के आशय को समझाने में सफल हुए हों, पर उन्होंने बात को उस ढंग से नहीं रखा जैसे मलार्मे ने रखना चाहा था। फिर 'in the calm of vaporous flowers' को 'सुमनों की लहकती बास के बीच', 'My dreaming loving to torment me' को 'मेरे स्वप्न—मेरी यातना के स्रोत', "Even without regret and deception' को 'अकारण ही' करके और अन्त में 'which has gathered it' को छोड़कर उन्होंने मूल के साथ काफी अन्याय किया है। मूल को सामने रखकर अनुवाद पढ़ने से स्पष्ट हो जायेगा कि dying violins' और 'सितार', 'White sobs' तथा सिसकियाँ और 'Blue Corollas' एवं 'फूल' एक नहीं हैं।

एक दूसरी कविता 'आह' की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

> "And the wandering heaven of your angelic eye
> Mounts up as in some melancholical gardens
> Faithful, a white jet sighs towards the Azure!"

अनुवाद—

जहाँ तुम्हारे दिव्य नेत्रो का भटकता हुआ स्वर्ग
ऐसे ऊपर उठता है
जैसे किसी उदास उद्यान मे
वेदना की एक गहरी श्वेत आह
सशरीर नीलाकाश की ओर बढ रही हो।

यहाँ jet शब्द को छोडकर अनुवादक ने आशय बिल्कुल बदल दिया। मूल मे जहाँ नेत्रो का स्वर्ग ऐसे ऊपर उठता है मानो एक श्वेत फौव्वारा (jet) नीलाकाश की ओर आह भर रहा हो, वहाँ अनुवाद मे फौव्वारे का कोई जिक्र तक नही, सिर्फ एक (गहरी) श्वेत आह (सशरीर) नीलाकाश की ओर बढ रही है। अनुवाद मे आह भरने को 'वेदना की एक गहरी श्वेत आह' के रूप मे 'सशरीर' कर देने का क्या औचित्य है?

'शान्ति' कविता का प्रारम्भिक अश देखिए—

Just a solitude—
Without the swan and quay
Mirrors its loneliness
In the look...

अनुवाद—

केवल एक सूनापन—
जीवन-स्पर्श से जो हीन
जिसकी असह् निर्जनता
झलकती दृष्टि मे. .

यहाँ भी जिस निर्जनता को कवि ने एक चित्र (Without swan or quay) द्वारा अकित करना चाहा था उसे अनुवाद मे वर्णन से पूरा किया गया है और इससे भी सन्तुष्ट न हो 'असह्' विशेषण जोडना पडा है।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि कुँअर नारायण ने शाब्दिक अनुवाद न करके कविताओं के मूल भाव को ही ग्रहण किया है (और उनके आशय को और स्पष्ट करने के लिए टिप्पणियाँ भी दी हैं)। रॉजर फ्राई (Roger Fry)ने, जिनके अनुवादो पर कुँअर नारायण के अनुवाद आधारित हैं, लिखा है, "अपने अनुवादो में मैंने प्रयत्न किया है शब्दश अनुवाद करने का, उतनी ही ध्वनि या लय की नियमितता रखते हुए जो उसमे बाधा न डाले। कही-कहीं एक लय मे शुरू से बँधे होने के कारण शाब्दिक तथ्यता (literal exactitude)नही रही है और ऐसे अवसरो पर दोनो तत्त्वो को समन्वित न कर पाने की असफलता का उल्लेख कर पाठक को सावधान कर दिया गया है।" लेकिन कुँअर नारायण ने ऐसा करना

उचित नही समझा।

अब हम फ्रांसीसी कविता के दूसरे अनुवादक कैलाश वाजपेयी के अनुवादो को लेंगे। ये अनुवाद 'युग चेतना' मे प्रकाशित हुए थे। इनमें से केवल रिम्बो (Rimboud) की कविता मुझे मूल रूप म प्राप्त हो सकी जो नीचे दी जा रही है

' I know skies burst in lightning waterspouts
And surfs and currents, the evening know,
And white dove populace exalted dawn,
Have sometimes seen what men believed they saw '

अनुवाद—

मैं विद्युत विदीर्ण आकाश
भूपण-सूत्रो
जल प्रणाली से अवगत हूँ।
सध्याओ
पारावत कुल के समान
ऊर्ध्वमुख विहानो को
जानता हूँ।
मैंने देखा है मनुष्य के उन विश्वासो को,
जो यह सब देखकर करता है।
(विश्वास)

' Seen the low sun with mystic horrors stained
Illuminating the long violet clots,
Like actors of most ancient tragedies
The distant waves their flickering shutters roll "

मैंने रहस्यमय भय के धब्बो से युक्त
डूबते सूरज को देखा है।
जो पुराने नाटको के अभिनेता की तरह
रक्त-वर्ण शिराएँ प्रकाशित करता है।
दूर आलोडित, संकुचित
प्रगकप करती
लहरो स परिचित हूँ।

"I, do you know, touched unthought Floridas,
Where flowers are mixed with panther's eyes, the skins
Of men with rainbows bridlewise outstretched
Beneath sea orizons to glaucous herds"

मैं मक्षुब्ध हूँ, जानते हो ?
सविश्वसनीय फ्लोरिडा !
जहाँ मानवत्वचाधारी
व्याघ्र की ग्राँखो मे फूलो का ग्रावास है !

"Marshe, I saw ferment, enormous traps,
Where, whole, Leviathans rot th' reeds,
Down-crashing waters in the tepid air,
The distances in cataract to th abyss"

(मुझ मे विद्रोह है)
क्षितिज तले सागर म उछलती मछलियो के समान
इन्द्रधनु के लिए !
मैंने कछारो का ग्रन्तस्ताप जाना है।
ग्रपरिमित जाल !
जहाँ धावित ह्वेल का
विगलन है !
(ग्रकस्मात्)
सन्नाटे के जल का सम्पात
ग्रौर दूरियाँ—
गहराई की ग्रोर जाती
दूरियाँ—

स्थानाभाव मे यहाँ केवल कविता का कुछ ग्रश ही दिया गया है। शुरू मे ही 'waterspouts and surfs and currents' को 'भूपण-सूत्रों जल प्रणाली' किया गया है ग्रौर चौथी पक्ति का 'Have sometimes seen what men believed they saw' 'मैंने देखा है मनुष्य के उन विश्वासो को जो यह सब देखकर कर रहा है (विश्वास)' कैसे हो गया ? ऐसे ही दूसरे, तीसरे ग्रौर चौथे पदों (stanzas) का ग्रनुवाद मुझे तो ग्रनुवादक की अपनी कल्पना मालूम पडती है—मूल से उसका इतना ही सम्बन्ध है कि उसके शब्द जरूर तथाकथित ग्रनुवाद मे ग्रा गये हैं। मूल ग्रौर ग्रनुवाद की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रनुवादक ने मूल-रचना के बिम्बो को न समझकर एक-एक पद को खीचकर, शब्दो की ऊँची मीनारें खडी की हैं।

ऐसा ही ग्रनुवाद एज़रा पाउण्ड (Ezra Pound) की एक कविता का जगदीश ने किया है जो (उनकी पत्रिका) 'इकाई' मे प्रकाशित हुग्रा था। पूरी कविता नीचे दी जा रही है—

"O God, O Venus, O Mercury, patron of th eves

Give me in due time, I beseech you, a little tobbaco shop,
With the little bright boxes piled up neatly upon the shelves
And the loose fragrant Cavandish and the shag
And the bright Virginia loose under the bright glass cases
And a pair of scales not too greasy,
And the whores dropping in for a word or two in passing
For a fillip word, and to tidy their hair a bit!
O God, O Venus, O Mercury, patron of thieves,
Lend me a little tobbaco shop or install me in any
profession
Save this damned profession of writing where one needs
One's brain all the time"

अनुवाद—

ओ प्रभु, ओ शुक्र, बुध
तस्करों के आश्रय
अनुनय लो
मुझे समय से दे दो
तम्बाकू की छोटी-सी दुकान
जहाँ शेल्फों पर
छोटे-छोटे चमकीले डब्बे
सजे हों पाँत की पाँत
और खुला
मह-मह करता
कैवेन्डिश
झलक-झलक-सा गंधीला शैग
और खुला ही
किन्तु ग्लास केसों में
झल-झल वर्जिनिया।
एक तराजू
सुथरी सी
गन्दी बहुत न हो
और जहाँ
कसबिन नगर भर की
आते जाते

दो क्षण ठहरें
निज केश सँवारें
दो बोल कहें
उच्छृखल
ओ प्रभु, ओ शुक, बुध
तस्करो के आश्रय
मुझे लगा दो
ऐसी छोटी-सी
तम्बाकू की दुकान
या बैठा दो
और किसी धन्धे स
हो इतना जरूर
धन्धा लेखक का न हो
जहाँ हर बात
दिमाग की होती।

इस अनुवाद मे मूल की एक-एक पक्ति को कई पक्तियो मे तोडकर और अनावश्यक विस्तार देकर पता नही जगदीश ने कौन सा विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है? जहाँ अनुवाद मे काली पक्तियाँ अनुवादक ने अपनी तरफ से जोड दी हैं, वहाँ मूल रचना के अन्त के 'Damned' जैसे शक्तिशाली शब्द को छोड दिया है और अन्तिम पक्ति 'Where one needs one s brains all the time' का 'जहाँ हर बात दिमाग की होती' कैसे हो गया, कम-से-कम मेरे दिमाग मे नही आया।

पुर्तगाली कवि अलबर्टो की कविताओ का अनुवाद करने मे परमानन्द श्रीवास्तव ने भी कुछ ऐसी ही मनमानी की है—कही कई महत्त्वपूर्ण शब्दो को छोडकर और कही कविता की व्याख्या करते हुए उसको अनावश्यक विस्तार देकर! एक कविता है 'मैं अपना नाम लिखता हूँ (यद्यपि अँग्रेजी मे शीर्षक है 'Core')

Core

"I write my name on time
And on the world,
All belong to me as a flower
Belongs to its perfume asleep
That stays vibrating in the air
After the sombre shedding"

अनुवाद—

मैं अपना नाम लिखता हूँ
मैं अपना नाम लिखता हूँ
समय पर
और तमाम सारी दुनिया पर
और.. और सब कुछ मुझसे
वैसे ही सम्बन्धित है,
जैसे फूल
अपनी सुवासित तन्द्रा से
जो हवा मे कांपती ठहरती है
यो ही झर जाने तक ..।

परमानन्द श्रीवास्तव ने अनुवाद की चौथी और अन्तिम पंक्ति मे . लगाकर मूल के पूरे पैटर्न को ही बदल दिया। पता नहीं, अनुवादक को चौथी पंक्ति मे 'और . ' करने की क्या जरूरत पड गयी और अन्त का 'after the sombre shedding—क्या मात्र 'यो ही झर जाने तक...' है? मूल-रचना की चौथी पंक्ति की 'perfume asleep' 'सुवासित तन्द्रा' होगी या 'तन्द्रिल सुवास'—पाठक स्वय निर्णय कर लें।

एक दूसरी कविता 'अनाश्रित' (The Orphan) का अन्तिम अंश देखिए

"Pitiful women longing
So much to have a son
Unknown, I am your life itself"

अनुवाद—

पुत्र की दुर्दम ईहा से प्रेरित
ओ कृपाशील औरतो
मैं खुद तुम्हारी जिन्दगी ही हूँ।

यहाँ मैं 'प्रेरित' शब्द के प्रयोग के लिए कुछ न कहकर, मूल के Unknown जैसे महत्त्वपूर्ण शब्द को छोड़ देने का औचित्य जानना चाहूँगा।

धर्मवीर भारती ने विभिन्न देशों की कविताओं के अनुवाद प्रकाशित किये हैं। वे विश्व की नयी कविता से हिन्दी पाठकों को परिचित कराने के लिए बधाई के पात्र हैं। पर उन जैसा सतर्क अनुवादक भी अनुवाद में मूल की व्याख्या करने की प्रवृत्ति का शिकार हो गया। बोरिस पास्तरनाक की एक कविता है :

The Wind

"This is the end of me, but you live on
The wind, crying and complaining,
Rocks the house and the forest,
Not each pine-tree separately
With the whole boundless distance,
Like the hulls of sailing ships
Ridding as anchor in a bay
It shakes them not out of mischief,
And not in aimless fury,
But to find for you, out of its grief,
The words of a lullaby"

अनुवाद—

मैं व्यतीत हुआ, पर तुम अभी हो, रहो।
हवा, चीखती चिल्लाती हुई हवा—झकझोर रही है
मकानों को, जगलों को
चीड के अलग-अलग पेड़ो को नही
वरन् सबो को एक साथ—तमाम सीमाहीन दूरियो को—
किसी खाडी म लगर डाले हुए लहरो पर उठते गिरते हुए
तमाम जहाजो की तरह
और हवा उन्हें झकझोर रही है
केवल चचलतावश नही
न निष्प्रयोजन क्रोध से अन्धी होकर
वरन् अपनी चरम पीडा मे से
मन्थन मे से,
तुम्हारी लोरी के लिए उपयुक्त शब्द
खोजते हुए।

यद्यपि कविता के मूल भाव को पकडने म भारती से कोई भूल नही हुई, पर अनुवाद मे काले अंश उन्होनें अपनी ओर से जोड दिये। चाहे इससे कविता के भाव अधिक स्पष्ट हो गये हो पर मूल कविता में पास्तरनाक न उन्हें इतना स्पष्ट नही करना चाहा था।

— ऐसे ही इलियट की 'मारिना का प्रारम्भिक अश देखिए—

"What seas what shores what-grey rocks and what islands
What water lapping the bow

And scent of pine and the wood thrush singing
through the fog
What images return
O my daughter !"

अनुवाद—

कौन-से समुद्र कौन-से तट कौन-सी भूरी चट्टानो और कौन-से द्वीप
कौन-स ज्वार-जल ढलानो से टकराकर बिखरते हुए
और चीड की गन्ध और वन-पाखी का गीत कोहरे मे से आता हुआ
आह ! लौट आते हैं कौन-से स्मृति चिह्न
ओ मेरी आत्मजा !

यहाँ भी भावार्थ समझाने के लिए 'water' को 'ज्वार-जल' और 'lapping the bow' का ढलानो से टकराकर बिखरते हुए' किया गया है।

ऊपर दिये गये उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि कविता का अनुवाद करना, मात्र एक भाषा से दूसरी भाषा मे कह देने का, सरल कार्य नही है, यह भी एक वास्तविक रचनात्मक कार्य है— आदर और सावधानी से करने योग्य। और यह बात नयी कविता के अनुवादो के लिए और भी लागू होती है जिसमे इस युग का जीवन अपनी सम्पूर्ण जटिलताओ के साथ प्रतिबिम्बित है। कोई भी लेखक, जिसे दो भाषाओ का अच्छा ज्ञान है, विचारों के काव्य (Poetry of ideas) का अनुवाद कर सकता है—लेकिन नयी कविता है छायाओं, सकेतो और सूक्ष्म सागीतिक प्रभावो की कविता। किसी सकेत को पकडने, इस तरल धुएँ-से पदार्थ को, जो विचारो के पीछे मँडराया करता है, बाँधने के लिए सूक्ष्मग्राही चेतना के भरपूर प्रयास की आवश्यकता है। फिर किसी अनुभूति से उत्पन्न यह सकेत, किसी वक्तव्य स उत्पन्न सकेत से, कुछ भिन्न होता है। इनका अस्तित्व वही तक होता है जहाँ तक ग्राहक (या भोक्ता) इसे अपने मन मे पुनर्रचित (recreate) कर सके। इस तरह से नयी कविता मे लेखक और पाठक दोनो की ओर से रचनात्मक प्रयास की आवश्यकता होती है।

ये जटिलताएँ और भी बढ जाती हैं जब लेखक और पाठक के बीच में एक तीसरा व्यक्ति अनुवादक और आ जाता है। तब क्या अनुवादक मूल को किसी भी प्रकार से बदल सकता है? शब्दश अनुवाद करने का खतरा यह है कि अपने प्रभावो स विलग होकर शब्द अपूर्ण रह जाते हैं। तब क्या अनुवादक उस बिम्ब को उतारे जो वे शब्द उसमे उत्पन्न करते हो? पर यह भी हो सकता है कि उस बिम्ब का उनके मन मे अस्तित्व ही न हो जिनकी सहायता अनुवादक करना चाहता है। इस समस्या का कोई सीधा हल नही है। सूक्ष्मग्राही चेतना और तीव्र प्रतिभा ही अक्सर ऐसे शब्द ढूँढने में सफल हो सकती है जो मूल रचना की सी

प्रतिक्रिया उत्पन्न करें।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा की अपनी सीमाएँ हैं। अकसर ही एक भाषा के मुहावरे को दूसरी भाषा मे उतारने मे बडी कठिनाई पडती है। उदाहरण के लिए, पास्तरनाक की कविता 'हवा' के अनुवाद मे भारती को 'hulls' शब्द के लिए एक पूरा वाक्यांश 'लहरो पर उठते-गिरते हुए' प्रयुक्त करना पडा। इस प्रकार अनुवादक के अनचाहे ही, मूल रचना की सक्षिप्तता और पक्तियो की सघनता से उत्पन्न सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

अनुवाद में कविताओ का चुनाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह बात निर्विवाद है कि अच्छे-से-अच्छा अनुवादक भी सभी कविताओ का अच्छा अनुवाद नही कर सकता। 'चीनी कविताएँ' (प्रकाशक जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन लि०) की भूमिका मे आर्थर वेली ने लिखा है. "यदि मैंने अन्य किसी लेखक की अपेक्षा (कवि) पो चुइ की दस गुनी अधिक कविताएँ अनूदित की तो इसका आशय यह नही कि वे अन्य लेखको से दस गुने अच्छे कवि हैं। इसका आशय सिर्फ यही है कि वे मुझे प्रमुख चीनी कवियो में सबसे अधिक अनुवाद्य (translatable) लगे। इसका तात्पर्य यह भी नही कि मैं अन्य कवियो से अपरिचित हूँ। वास्तव मे मैंने ली पो, तू फू और सू शी को अनूदित करने के कई प्रयत्न किये, लेकिन परिणाम से मुझे सन्तोष नही हुआ।" हिन्दी में कितने अनुवादक हैं जो अपनी असफलताओ को स्वीकार करेंगे! अच्छी कविताओ को लेकर ही अनुवादक उस कवि के साथ न्याय कर सकता है। किसी ने ठीक कहा है कि अनुवाद अपने सर्वोत्तम रूप मे मात्र एक प्रतिध्वनि है। लेकिन घन-गर्जन की प्रतिध्वनि भी काफी प्रभावशाली होती है। अन्त मे मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि अनुवादक का एकान्त कर्त्तव्य है *सर्वाधिक शाब्दिक अनुवाद (most literal translation)* प्रस्तुत करना। संवाद बोलने वाला मूल लेखक होता है; अनुवादक मात्र सत्वरक (prompter) बनकर केवल खोये हुए शब्दो की पूर्ति करता जाता है।

('कृति' के कविता-विशेषांक से साभार)

महेन्द्र चतुर्वेदी

उपन्यास का अनुवाद

उपन्यास : अनुभूति का साहित्य

साहित्य की अन्य सर्जनात्मक विधाओं की भाँति उपन्यास भी मूलत. अनुभूति का साहित्य होता है। उपन्यासकार गद्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। कविता से इसका मूल अंतर विस्तार का नहीं होता क्योंकि कविता बड़ी भी हो सकती है, छोटी भी और उपन्यास छोटा भी हो सकता है, बड़ा भी। मूल अंतर वस्तुत होता है अनुभूति की तरलता-सघनता और अमूर्तता का। उपन्यास मे—और कहानी मे भी—लेखक की अनुभूति अधिक मूर्त धरातल पर स्थूल सामाजिक परिवेश मे एक या अधिक पात्रो के माध्यम से प्रतिफलित होती है, जबकि कविता मे अनुभूति का स्वरूप अपेक्षाकृत सूक्ष्म-अमूर्त होता है। उसके भावात्मक सूत्र किन्ही विशेष प्रतिमाओ से जुडे हुए नही होते और यो किसी भी प्रतिमा मे जुड सकते हैं—इसीलिए टी० एस० इलियट[1] ने 'आत्म की अभिव्यक्ति को नही वरन् आत्म से मुक्ति' को महान् कविता की आधार शिला माना है। कहानी-उपन्यास मे प्रकट होने वाले पात्र व्यक्ति अधिक होते हैं, अपने परिवेश-विशेष मे उनकी वैयक्तिकता और अधिक मूर्त-मुखर हो उठती है, जबकि कविता का व्यक्ति सामान्य होता है—और उसी मे उसका विशेष प्रभाव निहित रहता है।[2]

उपन्यास बनाम अन्य विधाएँ

कहानी और उपन्यास के समान्तर यदि अन्य किन्ही साहित्य-रूपो का उल्लेख

---

1 दे० प्रसिद्ध निबंध : 'Tradition and Individual Talent' (T S Eliot)

2 यहाँ अपने विवेचन में मैंने 'उपन्यास' को ही विशेषतः अपना लक्ष्य रखा है किन्तु प्रसंगतः कहानी की चर्चा भी की है क्योंकि दोनों के अनुवाद की समस्याओं में परिमाण का अन्तर है, गुणात्मक अन्तर विशेष नहीं।

करना हो तो वे एकाकी और नाटक हो सकते हैं। इनके अनुभूत्यात्मक स्वरूप मे एक हद तक समानता होती है, गद्यात्मक माध्यम की दृष्टि से भी वे समान होते हैं, किन्तु उनमें एक विशिष्ट भेद यह होता है कि नाटक मच से जुड़े होने के कारण दृश्यात्मक तत्वो की अपेक्षा रखता है। उसमे नाटककार की समाज-चेतना और जागतिक अनुभव की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नही होती वरन् वे कुछ पात्रों की चेतना और अनुभवो के स्रोतो मे ढलकर अभिव्यक्ति पाते हैं। यों एक प्रकार से वह स्वय तो अप्रत्यक्ष रहता है, उसके प्रवक्ता कमोबेश उसकी भावना और विचार-सरणि को सामाजिक के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। यह नाटक की शक्ति भी है, सीमा भी। *कहानी-उपन्यास को जो विविध युक्तियाँ और साधन उपलब्ध हैं,* नाटक को नही। कथाकार परोक्ष रहकर अपने मनोनुकूल पात्रो के माध्यम से भी अपनी अभिव्यक्ति करता है और प्रत्यक्ष पाठक से सम्पर्क जोडकर भी बीच-बीच मे कथासूत्रो को अथवा अपने चिन्तन-प्रवाह को अग्रसर करता है। इस दृष्टि से उपन्यासकार-कहानीकार को बडा सशक्त माध्यम उपलब्ध होता है—इसीलिए अनेक पाश्चात्य आलोचको ने यह तथ्य मुक्तकठ से स्वीकार किया है कि आज का युग उपन्यास का युग है और आज का जीवन अपनी अनेकमुखी विविधता, जटिलता और विशदता मे अगर किसी स्रष्टा कलाकार की पकड मे आ सकता है तो उपन्यासकार की। एलेन ग्लासगो का यह वक्तव्य अत्यन्त सटीक है कि 'मेरे मत से मानवीय अनुभव की सम्पूर्ण व्यापकता और मानव-नियति की अपार विस्तृति उपन्यास की परिधि मे सिमट आ सकती है।" पाठक वस्तुत उपन्यास के माध्यम से जीवन के अमित विस्तार की झलक पा लेता है वह मानवीय अनुभूतियो के विस्तृत क्षेत्र मे सहभागी हो जाता है। उपन्यास के माध्यम से उसे आधुनिक समाजो के क्रियाकलाप, जटिलताओ, विषमताओ, राग द्वेषो, भावनात्मक तनावो और दबावो, सामाजिक-नैतिक-आर्थिक समस्याओ, सुख-शान्ति तथा अन्तर्बाह्य कलह-अशान्ति का जितना सशक्त एव यथार्थ प्रतिबिम्ब मिल सकता है, किसी अन्य माध्यम के द्वारा सम्भव नही। मानव की रुचियाँ जितनी विविध और विभिन्न हो सकती हैं, उतनी ही विविधता उपन्यास के विषय और उसके निरूपण-प्रतिपादन मे हो सकती है।

उपन्यास मे यथार्थ की अनिवार्यता

आधुनिक उपन्यास और कहानी की सबसे बडी विशिष्टता है उसकी यथार्थपरकता, जीवन के साथ उसका प्रत्यक्ष सहज जुडाव। अन्य स्रष्टा कलाकारो की अपेक्षा वह अपनी सामग्री—मानवीय अनुभूति की सामग्री—के प्रति अधिक यथार्थ तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण लेकर प्रवृत्त होता है। एक बिन्दु पर आकर उसका दृष्टिकोण सामान्य व्यक्ति के दृष्टिकोण के समकक्ष हो जाता है बल्कि उसी मे पर्यवसित हो जाता है। अत अन्य स्रष्टा कलाकारों की अपेक्षा वह सत्य के—अथवा

व्यक्तिनिष्ठ सत्य को यदि तथ्य कहें तो तथ्य के—अधिक निकट आ जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि वह केवल यथार्थ की ही अन्ध उपासना करता है—अन्तर मात्रा का है, और वह बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। यों उसकी रचना-सामग्री भी कुछ हद तक तो मिश्रित होती ही है। उपन्यास की धारा वास्तव में दो तटो के बीच में से प्रवाहित होती है—एक तट सामाजिक इतिहास अथवा समाज दर्शन का होता है और दूसरा अमूर्त दर्शन अथवा प्रगीति-काव्य का, या यों कहें कि एक तट वस्तुपरकता का होता है, दूसरा आत्मपरकता का। यों अपने विकास मे वह निरन्तर आत्मपरकता के तट से दूर और वस्तुपरकता के तट के अधिकाधिक निकट होता चला गया है। परन्तु बहिरग और अन्तरग तत्त्वो, बहिर्मुखी और अतर्मुखी प्रवृत्तियो के सामजस्य के बिना उपन्यास की गति नही। एकान्त अन्तर्मुखी वृत्ति कवि के भावन, उसकी सवेदना को गहराई दे सकती है, किन्तु उपन्यासकार की परिस्थिति-सयोजना, प्रसगोद्भावन-शक्ति तथा प्रबन्ध-कौशल को खडित भी कर सकती है। इसके प्रमाणस्वरूप इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि ससार के इतिहास में ऐसे समर्थ कवि तो हुए हैं जो उसी कोटि के नाटककार भी हो, पर ऐसे कम ही हुए हैं जो उसी कोटि के उपन्यासकार भी रहे हो। इस सदर्भ मे आधुनिक भारत के दो समर्थतम कवियो के नामो का उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जयशकर प्रसाद। दोनो की गणना भारत के रससिद्ध-कवियो में की जाती है और दोनो न ही उपन्यास के क्षेत्र में भी अपनी कलम आजमाई है किन्तु हर तटस्थ पाठक स्वीकार करता है कि उपन्यासकार के रूप मे उनकी उपलब्धियाँ वैसी स्तुत्य नही रही।

उपन्यास और आधुनिक जीवन

उपन्यास जटिल मानव सभ्यता की देन है। कहानी भी। कहानी इकहरी सवेदना अथवा घटना या चरित्र के बिन्दु से उभरकर प्रभावान्विति मे अपने स्वरूप को चरितार्थ करती है, उपन्यास के अनेक सूत्रो मे व्यष्टि अथवा समष्टि जीवन के विभिन्न स्तरो का उसके विस्तार और व्यापकता मे प्रतिफलन होता है। मानव की उत्तरोत्तर भौतिक प्रगति के साथ जीवन के सूत्र भी अधिकाधिक उलझते चले गये हैं। वस्तुत उपन्यास (कहानी) का लेखक और पाठक दोनो उसके माध्यम से अपने-आपको पाने का प्रयत्न करते हैं। जो लोग यह कहते हैं कि उपन्यास (कहानी) का काम (मूलहीन) कल्पना के बल पर केवल जीवन की कुछ परिस्थितियो की क्रम-बद्ध सयोजना कर देना भर है—अर्थात जो उपन्यास को उद्देश्यहीन मनोरजन का साधन मानते हैं, वे उपन्यास को बडी उथली दृष्टि से देखते हैं। अन्य साहित्य-रूपो की भाँति इसका लक्ष्य भी आत्म-तत्त्व की उपलब्धि है—साक्षात्कार है। और यही मानव जीवन की उच्चतम साधना है। साहित्यालोचक ऐलन प्राइस जोन्स के ये

शब्द इस दृष्टि से बड़े सारगर्भित हैं "यह न समझें कि आप कल्पना-प्रसूत परि-स्थितियों से प्रभावित होने के लिए उपन्यास पढ़ते हैं—आप उपन्यास पढ़ते हैं आत्मान्वेषण के लिए ।" इस आत्मान्वेषण के साथ ही साथ समष्टि सत्य का संधान भी चलता रहता है। आत्म तत्त्व का अन्वेषण व्यक्तिपरक प्रयास है, *समष्टि-सत्य की खोज वस्तुपरक। जीवन के सत्य की खोज व्यष्टि और* समष्टि के पारस्परिक संदर्भों—उनके सामंजस्य और संघर्ष के संदर्भों—के क्षेत्र में की जाती है। और जोन्स का मत तो यह है कि यह समन्वित सत्यान्वेषण साहित्य की किसी भी अन्य विधा के द्वारा संभव नहीं है। इस प्रकार उपन्यास में अंतरंग और बहिरंग तत्त्व का, सामाजिक इतिहास और प्रगीति संवेदना का, सम-सामयिकता तथा शाश्वतता का प्रयोग और परम्परा का, व्यष्टि और समष्टि का सहज समन्वय संघटित हो जाता है—परस्पर विरोधी तत्त्वों के समाहार की यह शक्ति उपन्यास की अन्तरंग क्षमता की साक्षी है। विरोधों के परिहार की भूमि उत्कर्ष की सहज पीठिका बन जाती है।

संश्लिष्ट विधा

उपन्यास के विषय-वस्तुगत वैशिष्ट्य की चर्चा करना यहाँ इसलिए आवश्यक था कि उसके अनुवादक की अनेकमुखी कठिनाइयों को समझा समझाया जा सके। *यदि हम यह मानें कि अनुवाद पुनःसृजन (re creation) होता है*—जो कि वह होता है—और यह भी मानें कि अनुवादक में काफी हद तक वे सब अर्हताएँ और योग्यताएँ होनी चाहिए जो मूल लेखक में रही हों तो उपन्यास के अनुवादक की कठिन और जटिल भूमिका स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

उपन्यास, संरचना के स्तर पर, एक संश्लिष्ट साहित्य-विधा है। अपने विस्तार में वह अन्य किसी भी साहित्य विधा को समेट लेने में समर्थ होता है। उपन्यास अपने इस संरचनागत लचीलेपन के कारण किसी भी अन्य विधा की परिधि में सहज ही प्रवेश कर जाता है। उसमें प्रायः इन तत्त्वों का समावेश रहता है

(1) *कथोपकथन या संवाद* इसके संदर्भ से उपन्यास में नाटकीय तत्त्व का समावेश हो जाता है। उपन्यास के पात्र अपनी शिक्षा, अपने संस्कार एवं अपने सामाजिक परिवेश तथा स्थिति के अनुरूप विशिष्ट व्यष्टि भाषा का प्रयोग करते हैं—तात्पर्य यह कि हरेक पात्र की भाषा का स्तर, रूप और प्रवृत्ति अन्यों से भिन्न हो सकती है और होनी है। ये पात्र अपने विशिष्ट संवादों के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करते हैं कथा को गति अथवा दिशा देते हैं और अन्य पात्रों, घटनाओं आदि के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रियाओं का सम्प्रेषण करते हैं। उपन्यास की कथावस्तु के संदर्भ में जितने स्तरों और मनोवृत्तियों के पात्रों का सृजन किया जायेगा, भाषा के स्तर पर उतनी ही विविधता का आ जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार अनुवादक

को अनेक स्तरो की भाषा और अनेक विशिष्ट क्षेत्रो की शब्दावली मे जूझना पडता है।

(2) दार्शनिक विचार, वक्तव्य अथवा प्रतिक्रियाएँ : उपन्यासकार कही विविध पात्रों के माध्यम से तो कही प्रत्यक्षत समाज तथा जगत की गतिविधियो के विषय मे अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है। समाज तथा व्यक्ति के जीवन की अनेक-मुखी घटनाओ के सहारे उसे जो प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुभव होते हैं, उनके सदर्भ मे जगत के प्रति उसकी दृष्टि ढलती-बनती है और अपने इस जीवन-दर्शन को भी वह अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करता है। जिन अशो मे उपन्यासकार अपने विचारो, अपने दर्शन को वाणी देता है, उनमे हम उपन्यास को 'निबन्ध' के स्वरूप मे घुलते-मिलते देखते हैं।

(3) कविता : कविता को अगर हम बहुत सकीर्ण अर्थ में ग्रहण न करें तो उपन्यास के जिन अशो मे अनुभूति तरल-सघन रूप ग्रहण करके शब्दो मे प्रस्फुटित होती है, उनका समग्र रूप चाहे गद्यात्मक हो चाहे पद्यात्मक पर अपने अतस्तत्त्व के नाते वह कविता ही होती है। यो भी जिन उपन्यासो की पृष्ठभूमि भावनात्मक हो, पात्र कम हो, मानसिक विश्लेषण विवेचन तथा ऊहापोह को अधिक रेखाकित करने की प्रवृत्ति हो तथा चरित्राकन गहरे मे उतरकर किया गया हो वहाँ कविता का—बल्कि काव्यात्मकता का—समावेश सहज स्वाभाविक है। 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' (अज्ञेय), 'अजय की डायरी' (डॉ० देवराज) का उल्लेख उदाहरणस्वरूप किया जा सकता है।

अनेकमुखी समस्याएँ

इस प्रकार हम पाते हैं कि उपन्यास (और कहानी) के अनुवादक को अन्तर्वस्तु के स्तर पर उन सब समस्याओं से जूझना पड सकता है जो नाटक, निबन्ध या कविता के अनुवाद के सदर्भ मे सामने आती हैं। भाषा के स्तर पर भी उसकी स्थिति प्राय ऐसी ही जटिल होती है। उपन्यास की गद्य-शैली का स्वरूप सर्वत्र एक जैसा रह ही नही सकता—जहाँ ऐसा होता है वहाँ उसमे यथार्थता की क्षति होती है और उपन्यास अपना प्रभाव खो देता है। कारण यह है कि न तो सब लोग एक-सी भाषा बोलते हैं और न एक ही व्यक्ति सब मन स्थितियो और सदर्भों मे एक-सी भाषा बोलता है और बोलता है तो इसका मतलब यह होगा कि उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कोई नही और वह लेखक के हाथ की कठपुतली मात्र है। इस भाषागत विविधता की ओर सकेत करते हुए ए० गॉर्डन ने ठीक ही लिखा है : "विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखें तो उपन्यास मे गद्य की चार सरणियाँ दृष्टिगोचर होती हैं : सवाद, कथाख्यान, वर्णन-विवरण तथा व्याख्या-विश्लेषण।" इसका अर्थ यह नही समझ लेना चाहिए कि मानो उपन्यासकार भाषा-प्रयोगो मे ही उलझा

रहता है और यही उसका विशिष्ट कार्य है—वस्तुत जीवन के जिन विविध पक्षों-रूपों में उसकी चित्तवृत्ति रमेगी, उसके अनुरूप भाषा के विविध रूप स्वत उसकी परिधि में आ जायेंगे। उसकी परिधि में शुद्ध और टकसाली साहित्यिक अथवा अध्यापकीय भाषा भी उसी सहजता से आयेगी जिस सहजता से कारखानेदारों की गाली-गलौजमयी सहज स्फुरित हार्दिक भाषा जिसके लिए अभिजात मन अनायास 'हीन' विशेषण का प्रयोग कर बैठता है।

वातावरण का सृजन पुन सृजन

भाषा के ये विविध रूप विविधस्तरीय एव विविध संस्कार एवं प्रवृत्ति वाले पात्रों के संदर्भ में आकर उस तत्त्व का सृजन करते हैं जो उपन्यास के संदर्भ में अत्यन्त—और कहीं-कहीं तो सबसे अधिक -महत्त्वपूर्ण होता है वातावरण। टॉल्स्टॉय ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'व्हाट इज आर्ट'[1] में कला के अंतरग तत्त्वों और अपेक्षाओं का विश्लेषण करते हुए सृजन के लिए जिस तत्त्व पर सबसे अधिक बल दिया है वह है 'अपनी सामग्री के प्रति कलाकार का दृष्टिकोण' अर्थात् इस बात पर कि अपने अनुभवों को प्रस्तुत करने में कलाकार किस हद तक सच्चाई से काम लेता है—दूसरे शब्दों में वह किस हद तक ईमानदार है। यह एक ऐसा तत्त्व है जो अन्य अभीष्ट तत्त्वों को अपने में बाँध लेता है। उपन्यास के अनुवाद के संदर्भ में इस ईमानदारी की बड़ी अपेक्षा होती है। अनुवादक के लिए यह आवश्यक होता है कि वह उपन्यास की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को तथा साथ ही उपन्यासकार की मनोभूमि को पूरी तरह हृदयगम करने के बाद ही अनुवाद के कार्य में प्रवृत्त हो। और यह कोई छोटा काम नहीं, बहुत बड़ी बात है। यदि वह इसके बिना अपने काम में लग जाता है तो उसके पुन सृजन में सब-कुछ होगा, बस प्राणप्रतिष्ठा नहीं हो पायेगी। और इस दृष्टि से उपन्यास के अनुवाद में सबसे कठिन—साथ ही सबसे महत्त्वपूर्ण—कार्य होता है वातावरण का पुन सृजन। और यह बात मैं केवल ऐतिहासिक उपन्यास के अनुवादक के संदर्भ में नहीं कह रहा, सामाजिक उपन्यासों के संदर्भ में भी यह बात उतनी ही सच है। वातावरण—प्रकृत और मानवीय परिवेश के यथोचित पुन सृजन के बिना अनूदित कृति में जान नहीं पड़ सकती। जैसा मैंने ऊपर कहा है, मूल उपन्यास के सम्पूर्ण परिवेश को आत्मसात् करना, उसमें निरूपित जीवन को सर्वांगीण रूप से समझना—विशेषत जब वह जीवन इतर अथवा अन्यदेशीय समाज का हो, जैसे अंग्रेजों या अमरीकियों का, फ्रांसीसी या जर्मनों का, अत्यन्त कठिन होता है पर जब वह समाज भी सम-सामयिक न हो तो समस्या और भी गहन हो जाती है। इसी प्रकार, आंचलिक

1 'What is Art and other Essays'—Leo Tolstoy

तथा ऐतिहासिक उपन्यासो मे परिवेश को पुन रूपायित करने की समस्या बडे कठिन रूप मे अनुवादक के सामन आती है।

अनुवाद के अवस्थान

अनुवाद की प्रक्रिया को मैं दो स्थूल अवस्थानो मे विभाजित करके देखता हूँ। पहले अवस्थान म अनुवादक को कृति को आत्मसात् करना होता है, उसके हर अश को तथा सपूर्ण कृति को समझना पडता है और वस्तुत उस मानसिकता को अपने अन्तर मे उतारन का प्रयत्न करना होता है जो सृजन के क्षणो मे—या दौर मे—मूल कृतिकार की रही होगी। इस मैं 'अर्थवत्ता बोध' के नाम से अभिहित करता हूँ। दूसरा अवस्थान 'सप्रेषण' का है जिसमे अनुवादक यह प्रयत्न करता है कि मूल कृति के कथ्य को उसी के समान्तर, वैसी ही प्रभावशाली, वैसी ही सरचना वाली दूसरी भाषा मे अभिव्यक्त कर दे। दूसरे अवस्थान की सफलता मे पहले अवस्थान की सफलता भी निहित होती है, क्योकि किसी कृति को समझे बिना उसके अनुवाद का प्रयत्न करनेवाला अनुवादक वैसा ही होता है जैसा वह लेखक जिसके पास कुछ कथ्य ही न हो। और 'अर्थवत्ता-बोध' शब्द का प्रयोग मैंने इसीलिए किया है कि केवल 'अर्थ' समझ लेना काफी नही, उसका बोध उसके समग्र परिवेश मे होना चाहिए।

अत मूल उपन्यास मे जिस समाज का जीवन चित्रित किया गया हो उसी को समझ लेना पर्याप्त नही, उसे देश-काल के सदर्भ मे समझना समझाना होता है और अन्य समाजो के सदर्भ में यह कार्य अत्यन्त दुष्कर होता है और जब तक हम उस परिवेश को हृदयगम नही कर पाते तब तक अनूदित कृति एक सफल रचना नही बन सकती।

परिवेश-भेद

समाज की भिन्नता कैसे हमारे रसास्वादन मे बाधक होती है—इसकी एक मिसाल मैं देता हूँ। सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका पर्ल एस० बक की अन्यतम औपन्यासिक कृति है—'द गुड अर्थ', जिस पर उन्हे साहित्य का नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसकी पटभूमि है चौथे दशक का चीन और इसका मुख्य पात्र है एक किसान वागलुग जो परिश्रम के बल पर अपनी दीन-हीन स्थिति मे ऊँचा उठता हुआ एक सम्पन्न जमीदार बन जाता है। जिस मिट्टी मे उसकी श्रमशील भुजाओ ने अपनी सार्थकता सिद्ध की है, सम्पन्न जमीदार बन जाने पर भी उसके प्रति उसका मोह कतई घटता नही। वह किसी भी तरह अपनी जमीन से उखडना नही चाहता, न यही चाहता है कि उसके बेटे जमीन स विमुख हों। वह किसी भी समसामयिक किसान का प्रतिरूप है। उपन्यास के अन्त मे ऐसा करुण व्यग्य है जो

किसी भी सहृदय पाठक को झकझोर सकता है—उसमें एक निष्ठावान् श्रमिक के जीवन की चरितार्थता को बड़े क्रूर और ठंडे ढंग से नकार दिया गया है उसके अपने बेटो द्वारा, जो केवल उसकी सम्पदा के भोग स मतलब रखना चाहते हैं। वागलुग अपने अन्तिम समय में अपनी मुट्ठी मे मिट्टी लेकर मानों उसकी सौगन्ध दिलाता हुआ अपने दोनो बेटो से इशारा कर रहा है—'If you sell the land, it is the end' दोनो बेटे उसकी बाँहे पकडे हुए उस ढाढस बँधा रहे हैं, 'Rest assured, our father, rest assured The land is not to be sold' और फिर एक लेखकीय टिप्पणी जो पाठक को हमेशा हमेशा कचोटती है 'But over the old man's head they looked at each other and smiled'

'द गुड अर्थ' (जिसका अनुवाद 'धरती माता' के नाम सहुआ है) की समस्या, उसका समाज, उसका सारा परिवेश ऐसा है जिसे हम भारतीय सदर्भों के नाते आत्यतिक समानता के कारण सहज ही हृदयगम कर सकते हैं। भले ही वागलुग क्रमश सम्पन्नता की ओर बढता चला गया है परन्तु उसकी वेदना 'होरी' की वेदना से भिन्न नहीं। यहाँ वातावरण अथवा परिवेश तो हमे बना-बनाया ऐसा मिलता है जो किसी तरह अभारतीय लगता ही नही – चार पाँच दशक पहले के भारत और चीन की सास्कृतिक समकक्षता थी भी इतनी उल्लेखनीय। परन्तु इसके बावजूद मुझे यह लगा कि वागलुग, चिंग, लोटस, कुक्कू, लिऊ आदि व्यक्ति-नाम तथा उपन्यास मे प्रयुक्त भौगोलिक नाम मानो पाठक के रसास्वाद मे बाधा डालते हैं। पढते-पढते बीच मे कोई नाम आने पर सहसा पाठक चौंक पडता है कि वह किसी भारतीय जनपद की कहानी नही पढ रहा वरन् उसका सम्बन्ध किसी अन्य समाज से है। मैं यह पैरवी नही कर रहा कि ऐसा है, इसलिए हमे अनुवाद मे नामो का भारतीयकरण कर देना चाहिए (यद्यपि अनेक अनुवादको ने वैसा किया भी है), मैं तो इस बात को रेखांकित करना चाह रहा हूँ कि इतनी जानी-पहचानी समस्या, इतना जाना पहचाना समाज होन पर भी केवल नामो के अजनबीपन से रसास्वादन मे बाधा पडती है और परिवेश अनजाना-सा लगने लगता है तो उन उपन्यासों का सफल अनुवाद कितना कठिन होता होगा जिनमे न समाज हमारा परिचित होता है, न उसके लोगो के तौर तरीके, न उनकी जीवन-पद्धति, न समस्याएँ और न वह देश-काल जिसमे कथायात्रा घटित होती है! मुझे तो लगता है, कि अगर 'होरी' को 'हैरिम करके (और इसी तरह अन्य नामो को विदेशी साँचो म ढालकर) 'गोदान' को सामन रखा जाये तो कदाचित् उसकी वेदना भी हमारे मन को इतना झकझोर न पायेगी! समग्र तादात्म्य के लिए नामो की क्या महत्ता होती है—यह बात इसी सदर्भ मे सही ढग से समझ मे आती है। शायद इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य के लिए 'ख्यात' कथा तथा किसी

राजपुरुष आदि को नायक के रूप में ग्रहण करने का विधान किया था—उस संदर्भ में 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया सहज हो जाती है।

आंचलिक और ऐतिहासिक उपन्यास

आंचलिक और ऐतिहासिक उपन्यासों में तो यह तथ्य और भी ज्यादा उजागर होता है। केवल भाषा-भेद का महत्त्व नहीं, महत्त्व है संस्कार और संस्कृति के भेद का और यह समस्या एकतरफा नहीं, दुतरफा है—यानी हिन्दी से अंग्रेज़ी में अनुवाद करने में भी आंचलिक और ऐतिहासिक वातावरण के पुन सृजन की समस्या कुछ कम कठिन नहीं होगी। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी गुजराती के मूर्धन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार थे। उनके किसी उपन्यास को ले लीजिए—उदाहरणार्थ, 'जय सोमनाथ' को। उसका हिन्दी अनुवाद पढ़ते हुए मुझे कहीं भी यह नहीं लगा कि मैं किसी अन्य भाषा के उपन्यासकार की कृति पढ़ रहा हूँ। मुंशी की कला अपने मनोरम रूप में मेरे सामने सहज ही हिन्दी के माध्यम से उद्घाटित हुई है और मुझे कभी यह नहीं लगा कि गुजराती जानता तो शायद इससे अधिक आनन्द 'पाटण का प्रभुत्व', 'गुजरात के नाथ', 'राजाधिराज' अथवा 'जय सोमनाथ' पढ़ने में आता परन्तु यही बात टॉलसटॉय के 'वार एंड पीस' के अनुवाद (युद्ध और शांति) के बारे में नहीं कही जा सकती। मैंने मूल रूसी में तो नहीं पर अंग्रेज़ी में टॉलसटॉय के इस विश्वप्रसिद्ध उपन्यास का रसास्वादन किया है और मैं मानता हूँ कि जहाँ हिन्दी में उसके प्रभावक्षय के लिए अनुवादक की असमर्थता जिम्मेदार है वहीं एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि उसके विशाल चित्रफलक को हिन्दी के पाठक की चेतना में उतार पाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है—हालाँकि यह तब है जब कि टॉल्स्टॉय ऐसे मूर्धन्य विदेशी कृतिकारों में हैं जिनके साथ तादात्म्य कर लेना भारतीय पाठक के लिए सबसे आसान है।

दूसरी ओर, हिन्दी में लिखे गये किसी ऐतिहासिक उपन्यास की भी, उदाहरणार्थ, चर्चा कर लेना अप्रासंगिक न होगा। रांगेय राघव का एक उपन्यास है 'चीवर'। 'चीवर' भारत के अन्तिम महान सम्राट् हर्षवर्धन और उनकी बहिन राज्यश्री के बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट होने की कहानी है। उपन्यासकार अपने पात्रों के संवादों, उनकी वेशभूषा तथा परिवेश के वर्णनों आदि के द्वारा हमें मनसा अनायास उस देश काल में ले जाता है जो महाकवि बाणभट्ट की वाणी से चमत्कृत था।

प्रारम्भ में ही यह अपने वर्णन के द्वारा हमें एक भिन्न देश-काल का बोध कराने में सफल होता है.

इस परिवेश—वातावरण—का निर्माण शब्दों के ही माध्यम से, और उनके यथोचित प्रयोग से, होता है। भाषाविज्ञानी तो कहता है कि कोई दो शब्द एक-दूसरे के पर्याय होते ही नहीं, कि यह आर्थी समकक्षता की धारणा एक भ्रम मात्र है। सांस्कृतिक क्षेत्र के शब्दों के बारे में यह वक्तव्य और भी अधिक सटीक समझना चाहिए। और अनुवादक को प्रतिशब्दों की ज़रूरत होती है, व्याख्याओं की नहीं—अथवा व्याख्याकल्प पर्यायों की नहीं : व्याख्याओं के प्रयोग द्वारा तो रस का ही क्षय हो जायेगा। अपनी बात को 'चीवर' के उदाहरण से और स्पष्ट करूँ। बौद्ध परिवेश के निर्माण के लिए 'चीवर' में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग है जो पुराकालिक गंध में रसे-बसे हैं, जैसे 'बोधिसत्त्व', 'वामाचार', 'संघस्थविर', 'शास्ता', 'कुमारामात्य', 'वज्रयानी', सम्यक् संबुद्ध', 'तथागत', 'परमभट्टारक', 'दंतस्मारक', 'भेरीनिनाद', प्रव्रज्या', 'मुंडी', 'देवानांप्रिय', 'गौल्मिक', 'दंडधर', 'कापालिक' आदि। इनमें से अधिकांश शब्द ऐसे हैं जिनके प्रतिशब्दों का प्रश्न ही नहीं उठता और जिनके यथावत् प्रयोग का सांस्कृतिक दृष्टि से अनभिज्ञ पाठक के लिए कोई अर्थ नहीं—और इनकी संख्या भी इतनी है कि पाद टिप्पणी देने का मतलब यह होगा कि पाठक पहले एक पूरे शब्दकोश को कंठस्थ करे तब उपन्यास पढ़ने में प्रवृत्त हो। इतना ही नहीं, मुझे तो लगता है कि एक साधारण संवाद के, जैसे सम्राट हर्षवर्धन का राज्यश्री को 'देवी!' कहकर सम्बोधित करना अथवा राज्यश्री का चयनिका को 'भाभी!' कहकर सम्बोधित करना, अंग्रेज़ी अनुवाद का प्रयत्न भी अपने-आपमें एक निष्फल व्यायाम सिद्ध होगा, तब वातावरण के पुनःसर्जन का प्रश्न ही क्या उठता है! 'देवी' में जो बात है वह किसी अंग्रेज़ी सम्बोधन में नहीं आ सकती और 'भाभी!' के लिए 'sister-in-law' हमारी चेतना में कोई संवेदना पैदा नहीं कर सकता।

यही बात कुछ कम अंशों में सामाजिक उपन्यास के अनुवाद पर भी लागू होती है। उदाहरण के लिए, अनन्तमूर्ति के कन्नड उपन्यास 'संस्कार' को ही लें। इस 'संस्कार' शब्द का ही अनुवाद असम्भव है—विशेष रूप में प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में जहाँ एक ओर उपन्यास की तात्कालिक समस्या—नारणप्पा का दाह-संस्कार—उसमें ध्वनित होती है और दूसरी ओर दो विरोधी संस्कारों के द्वन्द्व का संकेत भी मिलता है—यानी जहाँ उसमें दोहरा अर्थ व्यक्त करने की क्षमता है। इस उपन्यास में पहले तो मूल समस्या ही किसी अभारतीय की समझ में नहीं आ सकती—एक संस्कारच्युत-भ्रष्ट-वेश्यागामी ब्राह्मण का दाह-संस्कार कौन करे? ब्राह्मण उसे ब्राह्मण नहीं मानते और चूँकि वह अब्राह्मण भी नहीं—जाति-बहिष्कृत नहीं—अतः कोई और उसका संस्कार कर कैसे सकता है! एक ओर इस दाह-संस्कार का प्रश्न है, दूसरी ओर भ्रष्ट संस्कारच्युत नारणप्पा के यथार्थनिष्ठ भोगवाद और त्याग-तपस्या की प्रतिमूर्ति तथा सर्वसमादृत आचार-विचारशील

काशीजयी ब्राह्मण प्रवर प्राणेशाचार्य के अध्यात्मोन्मुख संस्कारों एवं मूल्य-मान्यताओं के टकराव की कहानी है। इस द्वन्द्व का अस्तित्व बड़े तीखे रूप में नारणप्पा के मरने के बाद ही प्रकट होता है--जो वास्तव में कहानी का प्रारम्भ-बिन्दु है। द्वन्द्वभूमि है प्राणेशाचार्य का संयम-जड़ मन और अग्रहार[1] का पाखंड-प्रवण तथा अर्थलोलुप परिवेश। इस कहानी में उत्तेजित क्षणों की दुर्दम वासना के कारण ध्वस्तसंयम प्राणेशाचार्य की करुण कहानी पाठक के मन को बड़े गहरे में कचोटती और झकझोरती है। इसका हिन्दी अनुवाद[2] पढ़ने पर यह कृति कहीं भी ऐसी नहीं लगती जैसे यह किसी अन्य भाषा में लिखी गयी हो या किसी अन्य समाज की कहानी हो—वह सर्वत्र बिलकुल जानी-पहचानी भूमि पर जाने-पहचाने —बल्कि आत्मीय—पात्रों की कथा प्रतीत होती है। कहीं-कहीं तो हिन्दी पाठक अनायास एक सुखद आश्चर्य में डूब जाता है—जैसे यह जानकर कि प्राणेशाचार्य की विद्वत्ता और शास्त्रज्ञता की विशेष धाक अग्रहार में इसलिए है कि उन्होंने शास्त्र ज्ञान काशी जाकर गुरुमुख से प्राप्त किया है। 'काशी पढ़ आना' उत्तर भारत के जनपदों में ब्राह्मण मात्र के लिए अत्यन्त गौरव की बात मानी जाती है। एक और उत्तर भारतीय जनपदीय विश्वास की प्रतिध्वनि इन शब्दों में सुनिए : "घर के सामने ही साँपों का प्रिय और देवताओं की पूजा के लिए अयोग्य फूलों-वाली रातरानी का झाड़ है।" कर्नाटक और उत्तर भारत की इतनी दूरी के बाव-जूद 'संस्कार' के वातावरण और उसके प्रत्येक पात्र के साथ, उनकी बोलचाल, रहन सहन, रीति रिवाजों के साथ हमारा सहज तादात्म्य हो जाता है—स्पष्ट है हिन्दी अनुवादक के लिए किसी भी अंग्रेज़ी उपन्यास की अपेक्षा इसकी पटभूमि अधिक जानी-पहचानी, अधिक आत्मीय तथा अधिक निरापद है।

मैंने अनन्तमूर्ति के इस उपन्यास के कुछ अंशों का अंग्रेज़ी अनुवाद कुछ वर्ष पूर्व 'इलस्ट्रेटिड वीक्ली' में पढ़ा था और अगर मैं अपने मन पर उसके प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख करूँ तो अनेक पुरस्कारों के संदर्भ में उस रचना ने मुझे निराश किया था। अब हिन्दी में उसी उपन्यास को आद्यंत पढ़ने के बाद वह मुझे अत्यन्त सशक्त रचना और मानव मन की कमज़ोरियों और समाज में बद्धमूल कुरीतियों-कुसंस्कारों का एक अत्यन्त सफल दस्तावेज़ लगा है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि इधर कई वर्षों में मैंने हिन्दी की कोई ऐसी सशक्त रचना नहीं पढ़ी।

अंग्रेज़ी से मैं टॉमस हार्डी के 'टैस' (Tess of the D uberville) का उदाहरण लेता हूँ। इंग्लैंड में अंचल का वह स्वरूप तो तब भी नहीं था जो हमारे यहाँ है और आज तो औद्योगीकरण ने अंचलों के विशिष्ट स्वरूप को बहुत हद तक ध्वस्त

1 वे ग्राम या ग्राम का वह भाग जो केवल ब्राह्मणों के निवास के लिए सुरक्षित रहता है।
2 अनुवादक—श्री चन्द्रकांत कुसनूर।

को तथा मानव-मन के ग्रतर्मर्म को उभारकर सामने रखा है। इसी प्रकार के ग्रनुभव की परिणति है 'द ग्रोल्ड मैन एड द सी'। इस नोबल-पुरस्कार से सम्मानित कृति मे हेमिग्वे ने मानव के उस ग्रदम्य साहस तथा नैसर्गिक शक्ति की कथा कही है जो उसे गिर-गिरकर उठने की प्रेरणा देती है। मानव की उस प्रसुप्त शक्ति को जगाकर हेमिग्वे ने जीवन की ग्रोर से मृत्यु को, विजय की ग्रोर से पराजय को चुनौती दी है। ग्रौर जीवन-ग्राशा को जगाने के लिए प्रयुक्त उनके उपकरण भी एकदम ग्रपूर्व ग्रौर ग्रछूते हैं।

मैंने दोनो उपन्यास ग्रौर दोनो के ग्रनुवाद पढने के बाद यह ग्रनुभव किया है कि ग्रँग्रेजी सस्करणो म जो प्रभावित है वह हिन्दी मे नही उतर पायी बल्कि, हिन्दी रूपान्तर पढते पढते ऊब-सी पैदा होने लगती है। इसका मतलब यह नही कि ग्रनुवाद ग्रच्छे नही—बल्कि इसके विपरीत केवल ग्रनुवाद की दृष्टि से देखा जाये तो दोनो के प्रयत्न काफी सफल कहे जायेंगे। वास्तव मे पृष्ठभूमि का भेद इतना गहरा ग्रौर इतना प्रभावी है कि दोनो मे से कोई भी उपन्यास हिन्दी पाठक की सवेदना को छू नही पाता। हिन्दी का पाठक ग्रपनी सवेदना को विस्तार देकर उन परिस्थितियो ग्रौर पृष्ठभूमियो को समझने ग्रौर ग्रात्मसात् करने का प्रयास जब तक नही करेगा तब तक इस प्रकार के उपन्यास उस वह ग्रानन्द नही दे सकते जो एक पाश्चात्य पाठक को दे सकते हैं।

इसका ग्रर्थ यह नही कि उपन्यासो के ग्रनुवाद करना व्यर्थ है। वास्तव मे उनका चयन हिन्दी पाठक की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के सदर्भ मे होना चाहिए ग्रौर ग्रनुवादक को उपन्यासकार की मानसिकता तथा घटना क्रम, पात्र ग्रादि मे प्रतिबिम्बित उपन्यास के वैशिष्ट्य का इतना परिचय करा देना चाहिए कि उसके बीच वह ग्रपने-ग्रापको ग्रजनबी महसूस न करे। इस प्रकार एक विशेष प्रकार की मानसिकता की सृष्टि के बाद ही वह उपन्यास के रसास्वादन की स्थिति मे ग्रपने ग्रापको पा सकता है। यहाँ ग्रनुवादक को ग्रनुवादक से भिन्न एक ग्रौर भूमिका का निर्वाह करना पडेगा जो ग्रनुवाद प्रारम्भ करने से पूर्व उसके ग्रपने लिए भी ग्रावश्यक है। मैं यह मानता हूँ कि ग्रनुवादक को मूल कृति मे कुछ घटाने-बढाने का ग्रधिकार नही पर उसे यह ग्रधिकार ग्रवश्य है कि मूल कृति के कलेवर को यथावत् रखते हुए ग्रपने कृतिकार ग्रौर कृति के सौष्ठव, वैशिष्ट्य ग्रौर मानसिकता को ग्रपने पाठक के सम्मुख ग्रालोकित करे ग्रौर उनके प्रति ग्रधिक-से ग्रधिक निकटता ग्रनुभव करने की प्रेरणा दे।

उपन्यास के वातावरण परिवेश, रचना शैली, विषय-वस्तु ग्रादि के रूपातरण की इन समस्याग्रो के साथ ही ग्रनुवाद का वास्तविक कार्य भी ग्रपने-ग्रापमे ग्रनेक समस्याग्रो से ग्रस्त होता है। ग्रनुवाद केवल शब्द का या वाक्य का नही होता —भले ही हम व्यवहारत करते वैसा ही हैं, ग्रनुवाद तो उनमें निहित

और प्रतिष्ठित तथा एक विशिष्ट शैली में अभिव्यक्त भाव, संवेदना-अनुभूति अथवा विचार का होता है। और चूंकि उपन्यास में अनेक विधाओं की भाषा-शलियो का संश्लेष होता है (जिसकी चर्चा मैंने अन्यत्र की है), अतः उपन्यास के अनुवादक का कार्य और भी कठिन हो जाता है। उसे भी यथास्थान अपने अनुवाद में भाषा-शैली को अनेक साँचो में ढालना पड़ता है। इसके लिए भाषा-शैली पर वैसे ही व्यापक अधिकार की अपेक्षा होती है जैसा स्वयं मूल कृतिकार का रहा होगा, अन्यथा निश्चय ही उसकी प्रभावात्मकता का क्षय हो जायेगा।

मैंने ऊपर उपन्यास मे गद्य की चार सरणियों की चर्चा की है। इन चार सरणियो में 'कथाख्यान' (narrative) तथा 'व्याख्या-विश्लेषण' (जिसमे लेखक की विश्व-दृष्टि—world-view—परिलक्षित होती है) अपेक्षाकृत अधिक वस्तुपरक होते हैं : अर्थात् उनमे अनुभूति का संश्लेष अपेक्षाकृत कम होता है। फलतः इनका अनुवाद कम कठिन कार्य होता है। इनके मुकाबले 'सवाद' तथा 'वर्णन-विवरणो' मे आत्मतत्त्व अधिक प्रतिफलित होता है और उसी अनुपात में इनका अनुवाद कठिन होता है। अब मैं उपन्यास के अनुवाद के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करके उनके सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करना चाहूंगा। उदाहरण मैं आल्बेयर कामू के La Chute (The Fall) के हिन्दी अनुवाद 'पतन' से ही ले रहा हूँ। इसमे परम्परागत अर्थ मे 'कथाख्यान' नही है क्योकि कोई सूत्रबद्ध कथा यहाँ नही, व्यक्ति के जीवन की घटनाएँ हैं जिन्हें वह स्मृति मे जीता है और जिनके माध्यम से मानव-प्रकृति का उद्घाटन करता चलता है। 'सवादो' का रूप भी यहाँ परम्पराबद्ध नही क्योकि वह मूलतः 'एकालाप' (monologue) है परन्तु फिर भी अप्रस्तुत व्यक्ति के साथ मानसिक संवाद का रूप उसमे प्रतिफलित हुआ है। 'वर्णन-विवरणो' और 'व्याख्या-विश्लेषणो' की दृष्टि से उपन्यास पूरी तरह समृद्ध है।

मैं पहले कह चुका हूँ कि इस उपन्यास की पृष्ठभूमि और ताना-बाना ऐसा है जो हिन्दी पाठक के मन मे सहज ही समानान्तर संवेदना नही जगा सकता; अतः इस सन्दर्भ मे अनुवादक की कठिनाई को भली-भाँति समझते हुए ही मैं कुछ स्थलों की ओर यहाँ सकेत करना चाहूँगा—भूलें दर्शाने का अभावात्मक दृष्टिकोण मेरा नही है।

अनुवाद का अभिप्रेत लक्ष्य भाषा के पाठक में समानान्तर सवेदना जगाना होता है परन्तु अगर मूल के शब्द लक्ष्य भाषा मे ढलकर वैसी कोई संवेदना न जगा पायें या सौन्दर्य-बोध अथवा भाव-बोध न करा पायें तो अनुवादक के लिए चिन्ता का विषय हो जाता है।

> 'Fancy the Cro-Magnon man lodged in the Tower of Babel !' (The Fall, p. 5)

'जरा कल्पना कीजिए डोमनोन (यह मुद्रण की भूल है !) मनुष्य की, बेबल की मीनार मे बन्द !' (पतन, पृ० 6)

मैं यहाँ सिद्धान्त की बात उठाता हूँ—क्या ऐसे पौराणिक अथवा प्राचीन ऐतिहासिक संकेत-गर्भित प्रसग हिन्दी पाठक को किसी अर्थ या बोध करा सकते है ! इस पूरे वाक्य का उसके निकट क्या अर्थ है !—क्या वह टिप्पणियाँ देखकर अर्थ समझने के धैर्य का परिचय देगा ? तब फिर ? मैं समझता हूँ, समानान्तर परिचित अभिव्यक्तियो के प्रयोग ही ऐसे सन्दर्भों मे करने का प्रयत्न होना चाहिए—अन्यथा उसमें निहित भाव समझा दिया जाये तो काम चलेगा, पर ऐसे गूढ प्रसग निश्चय ही उसकी रसग्राही वृत्ति पर चोट करते हैं। (यों मैं यहाँ तारीफ करूँगा कि अनुवादिका ने टिप्पणियाँ देकर पाठक की मदद करनी चाही है।)

'He would certainly feel out of his element' (p 5)

'बेशक यह हक्का-बक्का रह जायेगा' से अच्छा अनुवाद होता 'उसके औसान खता हो जायेंगे।'

'His dumbness is deafening' (p. 5) 'उसका मौन हमे बधिर बना देता है' से अधिक सटीक अनुवाद होता 'उसका मौन कान फोड देता है !' 'बधिर बनाने' का अभिप्राय यहाँ नहीं है।

'It's the silence of the primeval forest heavy with menaces' (p 5)

' विभीषिकाओ की मार से बोझिल'। यहाँ 'मार' की क्यो आवश्यकता पडी !—उसके बिना काम ठीक चलता।

'When he refuses to serve someone, he merely grunts' (p 5)

'जब वह किसी की खिदमत नही करना चाहता तो बस सुअर की-सी एक आवाज कर देता है'। 'grunts' के लिए इतने शब्दो का प्रयोग अनुवादिका को इसलिए करना पडा कि उसके लिए एक शब्द उसे याद न आया होगा—'घुर-घुराना'।

'No one insists' (p 5) 'कुछ जोर-जबर्दस्ती नही करता'। न no one 'कुछ' है और न insists 'जोर-जबर्दस्ती', बल्कि होना चाहिए 'कोई आग्रह/ज़िद भी नही करता'।

'One of the rare sentences I have heard from his mouth proclaimed that you could take it or leave it' (p 6)—'इसके मुख से एक **दुर्लभ वाक्य** मैंने सुना था, जब इसने घोषणा की थी कि लेना हो तो लो, वरना जाने दो' (पृ० 6)। यहाँ मैं आपका ध्यान 'दुर्लभ वाक्य' की ओर

दिलाना चाहूँगा और अनुवादको से यह कहना चाहूँगा कि अनुवाद में विशेषण के सन्दर्भ मे विशेष सतर्कता की आवश्यकता होती है। उपर्युक्त अनुवाद से तो लगता है मानो 'लेना हो तो लो वरना जाने दो' वाक्य ऐसा है जो कभी सुनायी ही नही पडता जबकि अभिप्रेत अर्थ यह है कि यह आदमी ('मेक्सिको सिटी' शराबघर का मालिक जिसे उपन्यासकार ने 'गोरिल्ला' कहकर याद किया है।) बोलता बहुत कम था (his dumbness was deafening) और उसके मुख से कभी-कबार जो वाक्य निकलते थे उन्ही मे से यह एक वाक्य कथाख्याता ने सुना था, अत सकेत वाक्य की 'दुर्लभता' की ओर नही है बल्कि वक्ता के मुख से किसी भी तरह के उच्चार के अभाव की ओर है। इसका अनुवाद यों होना चाहिए · 'इसके मुंह से कभी-कबाद ही कोई वाक्य निकलता है और ऐसे ही एक वाक्य म जो मैंने सुना घोषणा की गयी थी . '।

'I am drawn by creatures 'Who are all of a piece' (p 6)

' .ऐसे जीव मुझे बहुत आकर्षित करते हैं जो समूचे एक ही खण्ड से गढ़े गये हो' (पृ० 6)

इस हिन्दी वाक्य का कोई अर्थ नही निकलता। 'of a piece' का अर्थ है 'एकरस'। ऐसे जीव मुझे आकर्षित करते हैं 'जिनहि न व्यापहि जगत गति' इसका बामुहावरा अनुवाद होगा।

'Anyone who has meditated a good deal on man, by profession or vocation is led to feel nostalgia for the primates' (p 6) यहाँ 'primates' के लिए 'स्तनपायी योनि' शब्द बहुत अर्थ व्यजक नही बन पडा। वास्तव मे वह मनुष्य के प्रति व्यग्य कर रहा है क्योकि वह हर काम कोई परोक्ष हेतु साधने के लिए करता है। यद्यपि primates' मे मनुष्य भी शामिल है पर यहाँ उसने उसे अपने अभिप्रेत अर्थ की परिधि से निकाल दिया है, तभी उसका व्यग्य सार्थक होता है। इसके तुरन्त बाद दूसरे पैरे का प्रथम वाक्य यो है 'Our host, to tell the truth, has some, although he harbours them deep within him' (p 6) यहाँ अनुवाद किया गया है 'कुछ तो है ही'। वास्तव मे अनुवादिका इस वाक्य का सम्बन्ध पिछले वाक्य से नही जोड पाई। इसीलिए अनुवाद के विषय मे एक बात बहुत सावधानी की होती है—वाक्य का अनुवाद करते हुए भी वाक्यो के पूर्वापर क्रम के प्रति अनुवादक को पूर्णत सचेत रहना होता है। 'some' का सम्बन्ध 'ulterior motives' से है। ' कुछ प्रेरणा हेतु जरूर हैं' अनुवाद होना चाहिए था। ' that look of touchy dignity' (p 6) का भाव 'उसके चेहरे पर शक्की भाव टपकता रहता है' से कतई व्यक्त नही होता। 'Indeed, there was a picture there' (p 6) का अनुवाद 'सचमुच वहाँ एक तसवीर लगी थी' सटीक नही। जहाँ जोर देना

चाहिए वहाँ ज़ोर न दिया जाये तो अर्थक्षति होती ही है। 'एक तसवीर लगी थी' एक सपाट अभिव्यक्ति है जिसमे 'was' (italics) का भाव नहीं सिमट पाया। 'masterpiece' के लिए 'उत्कृष्ट कलाकृति' ठीक ही है हालाँकि 'शाहकार' उसका अधिक सटीक पर्याय होगा (और हाँ, 'एक सही मायनो मे उत्कृष्ट कलाकृति' नही 'सही मायनों मे एक उत्कृष्ट कलाकृति' होना चाहिए)।

'In both cases he did so after weeks of rumination, with the same distrust (p 6) का अनुवाद 'दोनो ही अवसरों पर उसने एक-सा निश्चय-अनिश्चय हफ्तो सोचा-विचारा' सर्वथा बेमानी है। हिन्दी के इस वाक्य का कोई मतलब नही निकलता—होना यो चाहिए 'दोनों ही बार अपने उसी अविश्वास के वश वह हफ्तो ऊहापोह मे रहा।'

'Mind you, I'mnot judging, him' को 'आप यह न समझें कि मैं उसके बारे में कोई फैसला दिये दे रहा हूँ' लिखना ठीक नहीं। यह एक चेतावनी है, अत 'न समझ बैठें' कहना ज्यादा मुनासिब होगा। और 'judging' का अर्थ 'फैसला देना' नहीं, 'मूल्यांकन करना' है।

'communicative nature' को 'वाचाल स्वभाव' कहना कुछ ज्यादा ही छूट लेना है। 'वाचाल' मे 'धृष्ट' का भाव है जिसमे कहनी-अनकहनी की तमीज़ न होने की ध्वनि है पर 'communicative' मे ऐसा कुछ नही। 'पेट खोल डालने का स्वभाव', 'बात पचा न पाने का स्वभाव' आदि वाक्यांश अर्थ के अधिक निकट पडते हैं।

'I am well aware that an addiction to silk underwear does not necessarily imply that one s feet are dirty' (p 7) मे 'addiction' शब्द महत्त्वपूर्ण है और इसे अनुवाद मे छोड देना किसी भी तरह उचित नही। और फिर, 'Nonetheless, style, like sheer, Silk, too often hides eczema' (p 7) मे 'too often' को छोड देना भी गलत है। इससे अगले वाक्य मे 'silhouettes' के लिए 'छायाचित्रों' की जगह 'छायाकृतियों' शब्द अधिक सटीक रहता।

'I confess my weakness for fine speech in general' (p 7) मे 'fine speech' का अनुवाद 'सुसंस्कृत सम्भाषण' नहीं, 'सौम्य अथवा सुष्ठु भाषा' होना चाहिए।

'Very middle class creatures' (p 7) मे 'very' का अनुवाद 'बिलकुल' के बजाय 'एकदम' ज्यादा जानदार होता।

'Haven't you noticed that our society is organised for this kind of liquidation' (p 8) का अनुवाद 'क्या आपने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया कि हमारे समाज की व्यवस्था इसी ढंग की समष्टि के लिए की गई है' एकदम ग़लत

है। ऊपर के वाक्य मे 'kill by a process of attrition की चर्चा है और यहाँ 'liquidation' का अर्थ भी वही है—खत्म करना, मार डालना आदि। 'समष्टि' का तो यहाँ कुछ प्रसग ही नही बैठता। 'It is a question of which will clean up the other' (p 8) के अनुवाद मे 'साफ कर देगा' होना चाहिए 'साफ-सुथरा नहीं'—दोनो किसी प्रसग मे पर्याय भी हो सकते हैं किन्तु यहाँ उनमें बहुत अर्थ भेद है। 'साफ करना' का अर्थ 'खतम कर देना है', 'साफ-सुथरा' का यह अर्थ नही हो सकता।

'With these people at least, spitefulness is not a national institution (p 8)—'कम से-कम इन लोगो मे विद्वेष भावना एक राष्ट्रीय सस्थान नही बन गई है'। यह अनुवाद एकदम शाब्दिक और निरर्थक है। 'राष्ट्रीय सस्थान' का अर्थ हिन्दी का कोई भी पाठक क्या समझेगा! 'institution' का अर्थ है 'established law, costom or practice' और रीति/प्रथा/परिपाटी शब्द का प्रयोग उस अर्थ मे करना चाहिए।

' with the sophisticated eye of the man in his forties who has seen every thing, in a way'—'आपकी नजर चालीस की उम्र के दुनियादार आदमी की नजर है जिसने...'। इस अनुवाद मे 'चालीस की जगह 'चालीस से ऊपर' होना चाहिए (क्योकि forties का अर्थ 40 से 49 तक होता है), 'नजर' का विशेषण अनुवाद मे 'आदमी' विशेष्य के साथ जोड दिया गया है। 'चालीस से ऊपर के आदमी की सधी हुई नजर 'ज्यादा सही अनुवाद होता।

मैं पहले कह चुका हूँ कि साधारणत अनुवाद अच्छा है किन्तु फिर भी बारीकी से जाँचने पर वाक्यो-वाक्यांशो के ऐसे अनुवादों के इतने-सारे उदाहरण केवल चार पृष्ठो मे निकल आये जिन्हें और सुधारा सँवारा तथा सही रूप मे दिया जा सकता था।

कुछ शब्दो के भी उदाहरण पेश करना अप्रासगिक न होगा

sadducee—सदूसी (पृ० 9) इस शब्द का अर्थ हिन्दी पाठक टिप्पणी की सहायता से भी समझ न पायेगा और जो टिप्पणी दी गई है वह कोश म देखकर दे दी गई है—प्रसग को समझाने मे वह कतई सहायक नही।

Judge-penitent—अनुतापी निर्णायक (पृ० 10) इसका कुछ भी तात्पर्य पाठक की समझ मे नही आयेगा। यो भी 'निर्णायक' तो जज का बहुत सीमित अर्थ है, 'न्यायाधीश' आदि शब्दो मे पद की व्यजना है। स्वय अनुवादिका ने 'न्यायाधीश-वर्ग' आदि का प्रयोग आगे किया है।

bathed in a light as of Eden—'दिव्य-ज्योति-स्नात' Eden का प्रत्यक्ष अनुवाद बचाकर यहाँ अर्थ की अभिव्यक्ति कर दी गई है। जो ठीक ही है।

Fascinating (p 7)—मनमोहक यह 'मनमोहक शब्द बड़ा फीका और

असमर्थ सा पर्याय लगता है। 'dummy setting' (पृ० 7) के लिए 'रगमच' बिलकुल अपर्याप्त है। dummy की सार्थकता आगे के silhouettes के सन्दर्भ मे समझ मे आती है। 'have come here, as usual, out of mythomania or stupidity' का अनुवाद 'कल्पना जगत मे रहने की इच्छा से या मूर्खता-वश आये हैं' बेहद लचर और निष्प्रभाव है। mythomania और stupidity दोनो ही के पर्याय निर्जीव हैं।

vacuum cleaning (p 10) को यथावत् नागरी मे लिप्यतरित कर दिया है। sophisticated के लिए 'दुनियादार' शब्द मे वास्तव मे उसके एक पक्ष का गया ही समाहार है, समग्र अर्थ का नही।

ये कुछ ऐसे शब्द हैं (और भी गिनाये जा सकते हैं) जिनके अनुवाद या तो उनके ऐतिहासिक-पौराणिक सदर्भों के सस्पर्श के कारण, या फिर अपनी विशिष्ट अर्थच्छवियो के कारण, हो नही पाते और पाद टिप्पणियाँ आदि रस-भग करके भी बहुधा कुछ मदद नही कर पातीं। ये हर भाषा-भाषी वर्ग की सास्कृतिक-भाषिक सीमाएँ होती हैं जिन्हें न अनुवादक के सिर थोपा जाना चाहिए, न जिन्हें लेकर भाषा की दरिद्रता की बात करनी चाहिए। ये सीमाएँ अंग्रेजी की भी हैं। मैं कुछ उदाहरण पहले दे चुका हूँ। 'सस्कार' के ये शब्द, शब्दबध तथा वाक्य देखिए

'मत्स्यगधा', 'कोदाबीर,' 'शेषशायी भगवान विष्णु', 'मासिक धर्म के बाद पवित्र हुई सद्यस्नाता पुष्पवती मणियो की तरह', 'मूँग मसूर की दाल की बू से बसी ब्राह्मणो की कौन-सी लडकी उसकी बराबरी कर सकती है ?', 'अब वह तार पर कसे मृदग की तरह से एकदम तैयार होगी !'

इनके अनुवाद केवल भाव को लेकर होगे और उनमें कभी उतनी जान नही हो सकती जितनी मूल अभिव्यक्ति मे है। मित्रो मरजानी' के 'जैसा अपना अभागा सरदारीलाल वैसी ही खपाने कलपाने वाली बहूटी मिल गयी वाक्य मे 'बहूटी' मे जो हिकारत और गर्हणा है वह अंग्रेजी के किसी पर्याय मे आ ही नही सकती।

इसीलिए हम अनुवाद को 'सन्निकटन' अथवा 'निकटतम समतुल्यता' कहते हैं।

किन्तु मुझे उतनी शिकायत शब्दों, शब्दबधों के सही और अवितथ पर्याय न खोज पाने या न होने से नहीं है, जितनी इस बात से कि वाक्यो मे पूर्वापर क्रम और प्रवाह का अभाव प्रतीत हो। उपन्यास सबसे पहले पढने और रमने के लिए होता है और जब भाषा मे रवानगी न होगी तो पाठक को पढने का मजा नही आयेगा और वह प्रवचित अनुभव करेगा। यह प्राय अंग्रेजी वाक्य-रचना मे उलझ जाने के कारण होता है। कुछ वाक्य देखिए—

'तो मैं यो कहूँगा कि दासता मुस्कराती हुई, इसीलिए अनिवार्य है।('पतन' पृ० 35)। 'कुछ और वास्तविकताओं के साथ-साथ इनकी भी उस शाम के, जिसकी मैंने आपसे चर्चा की थी, बाद के काल मे धीरे-धीरे मुझे जानकारी हुई' (वही, पृ० 35)। 'मैंने आपसे जिस शाम की चर्चा की थी उसके बाद मुझे इनकी और कुछ अन्य वास्तविकताओं की धीरे-धीरे जानकारी हुई'—क्यो नही ?

'जो प्रतिज्ञा वे मुझसे करती थी वह मुझे तो स्वतन्त्र कर देती थी और उन्हें बांध देती थी। जैसे ही मुझे निश्चय हो जाता था कि वे और किसी की नही हो सकती, मुझे इसका अवसर मिल जाता था कि मैं उनसे संबध-विच्छेद कर दूँ—जो करना वैसे मेरे लिए करीब-करीब असभव होता जहाँ तक उनका प्रश्न था और काफी दिनो के लिए *अपना अधिकार सुरक्षित कर चुका होता* है।' (वही, पृ० 47) (बेहद उलझा हुआ वाक्य)।

यो प्रस्तुत अनुवाद मे वाक्य-रचना काफी हद तक सुलझी हुई और प्रभावी है किन्तु कही-कही ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ एकाध शब्द के उलट-फेर से ही वाक्यो मे चमक आ सकती है। प्रवाहमयता बडी आवश्यक होती है। उससे भाषा म सहजता आती है और इस सहजता के लिए कभी-कभी मूल वाक्य-योजना मे काफी हद तक छूट लेनी पडती है।

इस सहजता के असीम महत्त्व को स्वीकारते हुए ही हम अनुवाद को 'निकटतम सहज समतुल्यता' कहते हैं।

सक्षेपत उपन्यास के अनुवाद के विषय मे मेरे निष्कर्ष इस प्रकार हैं·

1 उपन्यास एक सश्लिष्ट साहित्य विधा है और उसके अनुवाद मे वे सारी समस्याएँ न्यूनाधिक मात्रा मे आती हैं जो *अन्य साहित्य-विधाओं के तथा* साथ ही साथ शास्त्र के—जैसे दर्शन, मनोविज्ञान आदि के—सदर्भ मे अनुवादक के सामने आती हैं।

2. *उपन्यास के अनुवाद में*—चाहे वह *सामाजिक हो, आचलिक हो ऐतिहासिक* हो—सबसे बडी कठिनाई होती है वातावरण के पुर्ननिर्माण की, और इस संदर्भ मे स्रोत और लक्ष्य भाषाओं मे जितनी सास्कृतिक दूरी होती है उतनी ही अनुवाद मे कठिनाई होती है। विदेशी परिवेश, भौगोलिक नाम, व्यक्ति-नाम, देश-काल-भेद, सास्कृतिक अर्थच्छवियुक्त शब्द सभी वातावरण के पुर्ननिर्माण मे कठिनाई प्रस्तुत करते हैं।

3 वैसे तो प्राय हर शब्द के साथ कुछ छायाएँ जुड जाती हैं पर मूल कृति की अनेक अभिव्यजनाएँ तो अनूद्य ही नही होती। उनमें भावग्रहण करके कथ्य और सप्रेष्य के अधिक-से अधिक निकट पहुँचने का प्रयत्न अनुवादक को करना चाहिए।

4 वाक्यो की रचना के प्रति अनुवादक को अत्यत सजग रहना चाहिए।

उपन्यास का पाठक किसी भी कीमत पर यह बरदाश्त नहीं करता कि उसके पढ़ने के प्रवाह में व्यवधान आए, अतः वाक्यों में तारतम्य, पूर्वापर क्रम और रवानगी का विशेष ध्यान उसे रखना चाहिए।

5 अर्थ की दृष्टि से मूल के साथ अधिकाधिक निकटता और लक्ष्य भाषा की सहजता के साथ परस्पर विरोधी लक्ष्यों की युगपत् सिद्धि में ही उपन्यास के अनुवादक की सफलता है। यदि अर्थ की दिशा और तीव्रता बनी रहे तो पर्यायों के यत्किंचित भेद से अनुवाद पर उतना असर नहीं पड़ता जितना लक्ष्य भाषा की सहजता पर आघात होने से।

भोलानाथ तिवारी

नाटक का अनुवाद

नाटक मूलत सवादो पर आधारित मच-विधा है। इसीलिए कविता, कहानी, उपन्यास आदि से वह काफी भिन्न है तथा उसके अनुवाद की समस्या भी काफ़ी भिन्न है।

यो, बहुत-सी भाषाओ मे जो नाटक मिलते हैं, उन्हें दो वर्गों मे रखा जा सकता है। एक वर्ग के नाटक तो वे हैं जो मच की दृष्टि से लिखे गये हैं। दूसरे वर्ग के नाटक मूलत पढने के लिए लिखे होते हैं। किन्तु यह कोई आवश्यक नही कि पढने के लिए लिखे गये नाटक का अनुवाद भी मात्र पढने के लिए किया जाये और उसकी मचनीयता का बिलकुल ध्यान न रखा जाये। अच्छा तो यही होगा कि नाटको के जो भी अनुवाद किये जाएँ वे मचनीय हो। इसका अर्थ यह हुआ कि कविता, कहानी, उपन्यास आदि के अनुवादक की तरह, नाटक के अनुवादक का, मात्र अनुवादक या साहित्य-अनुवादक होना पर्याप्त नही है। उसके लिए एक बहुत ज़रूरी शर्त यह है कि उसे मच का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इसके बिना इस मच-विधा के अनुवाद मे वह बहुत सफल नही हो सकता। कम-से-कम उतना सफल नही हो सकता, जितना मच का जानकार अनुवादक हो सकता है।

ऊपर कहा गया है कि नाटक सवादो की विधा है। सवादो की सबसे बडी विशेषता यह होती है कि उसके वाक्य छोटे होते हैं। बडे वाक्यो को मच पर बोलने मे भी कठिनाई होती है तथा मचन के समय उन्हें सुनकर, दर्शकों द्वारा तुरन्त समझ लेने मे भी कठिनाई होती है। इसीलिए नाटक के अनुवादक को अपने वाक्य छोटे रखने चाहिए। यदि मूल का कोई वाक्य बडा हो तो वह उसे दो या अधिक वाक्यों मे तोडकर छोटा कर सकता है—बल्कि उसे छोटा कर लेना चाहिए। हम जानते हैं कि अनुवादक को यह अधिकार होता है कि वह सुविधानुसार स्रोत भाषा की मूल सामग्री के किसी एक वाक्य

को लक्ष्य भाषा मे अनुवाद करने मे दो या अधिक वाक्यो मे तोड ले, या फिर इसके उलटे दो या अधिक वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बना ले। नाटक के अनुवादक के लिए पहली छूट तो है, किन्तु उसे यथासाध्य कई वाक्यो को मिलाकर एक वाक्य नही बनाना चाहिए, क्योकि ऐसे वाक्य के प्राय. बडे हो जाने की सभावना होती है, जो नाटक की सवादात्मक प्रकृति के अनुकूल नही बैठता।

नाटक के वाक्यो की एक और अनिवार्य आवश्यकता यह है कि उनमे उलझाव नही होना चाहिए। कविता, कहानी, उपन्यास आदि के वाक्य उलझे भी हो तो पाठक दो-तीन बार उन्हे पढकर समझ सकता है, किन्तु मच पर किसी वाक्य को दो-तीन बार सुनने का प्रश्न ही नही उठता। ऐसी स्थिति मे नाटक के वाक्य मे यदि थोडी भी उलझन हुई, तो श्रोतागण को उसके समझने मे कठिनाई हो सकती है, और इस प्रकार की कठिनाई नाटक के लिए बहुत बडा दोष है।

नाटक की भाषा के एक अन्य अनिवार्य गुण की ओर भी अनुवादक का ध्यान देना आवश्यक है। नाटक के वाक्य, सर्वदा व्याकरण-विहित पूरे वाक्य नही होते, अपितु उनके काफी अवयव लुप्त रहते हैं, और उस लुप्तता की पूर्ति सदर्भ से हो जाती है। उदाहरण के लिए, कोई पूछे 'तुम कहाँ जा रहे हो ?' तो इसका उत्तर हिन्दी मे 'मैं घर जा रहा हूँ' न होकर 'घर' या 'घर जा रहा हूँ' होगा। अनुवादक को अपने अनुवाद मे सवादानुकूल इस प्रकार के अधूरे वाक्यो का ही प्रयोग करना चाहिए, नही तो सवाद मे अस्वाभाविकता आ जाती है।

इस प्रसग मे एक बात और भी उल्लेख्य है। वाक्य के कुछ अवयवो को सवाद मे छोड देने के नियम सभी भाषाओ मे एक नही होते। उदाहरण के लिए, 'कहाँ जा रहे हो ?' का उत्तर हिन्दी मे 'घर' हो सकता है, किन्तु अंग्रेजी मे 'होम' नही होगा। इस तरह नाटक के अनुवादक को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा मे सवाद के वाक्याशो को छोडने के नियमो से भली भाँति परिचित होना चाहिए, ताकि उनके उपयोग से वह अपने सवाद को स्वाभाविक और जीवन्त बना सके।

कभी-कभी नाटक के अनुवादक से ऐसी भूल हो जाने की सभावना होती है कि वह स्रोत भाषा के लोप के नियमो को लक्ष्य भाषा मे लागू कर देता है। ऐसी भूल मूल के प्रभावस्वरूप होती है। ऐसी भूल से नाटक के अनुवादक को सतर्क रहना चाहिए और उपर्युक्त दृष्टियो से उसे अपने अनुवाद को कई बार पढ लेना चाहिए।

आगे नाटक के अनुवाद के उदाहरण-रूप में इब्सन के अंग्रेजी में अनूदित प्रसिद्ध नाटक Ghost का प्रारंभिक अंश तथा उसका नेमिचन्द्र जैन द्वारा किया

या हिन्दी अनुवाद ('प्रेत' शीर्षक से यह पूरी पुस्तक अनूदित होकर प्रकाशित) दिया जा रहा है—

अंग्रेजी

[A spacious garden room,[1] with one door on the left wall, and two on the right. In the centre of the room stands[2] a round table, with chairs round[3] it; books, periodicals,[4] and newspapers are lying on the table. Downstage,[5] left is a window and near it a small sofa with a work-table in front of it. The room is continued at the back of the stage into an open and rather narrower conservatory, the walls of which are extensively glazed.[6] In the right wall of the conservatory is a door that leads out into the garden Through the glass wall may be glimpsed a gloomy[7] ford landscape, shrouded in steady rain.

Jacob Engstrand [8]is standing beside the door into the garden His left leg is somewhat[9] deformed, and he wears a boot with a built-up wooden sole.

Regine with an empy garden syringe in her hand, is trying to prevent him coming any [10]further.]

Regine (keeping her voice[11] low) What do you want[12] ? Stay where you are. You are dripping wet.

Engstrand. It's God's own rain, my child.[13]

Regine. More like the devil's, you mean.[14]

Engstrand. Lord, the things you say, Regine,[15] (Takes a few limping steps into the room). But what I wanted to tell you was...[16].

Regine. Stop clumping about with that foot,[17] man! The young master's upstairs asleep.

Engstrand Asleep ? At this time of day ?

Regine. That's got nothing to do with you.[18]

Engstrand. I was out having a few drinks last night...

Regine That I can well believe.[19]

Engstrand Well, [20] we are frail creatures, all of us,[21] my

child ..

Regine We are that [22]

Engstrand and many are the temptations of this world, you know but still, there was I up and at work at half past five this morning

Regine Yes, yes [23] but off you go now I'm not standing for having rendezvous here with you [24]

Engstrand Having what, did you say ?[25]

Regine I'm not going to have anybody finding you here So, away you go

Engstrand (comes a few steps closer) I'm damned if I'm going before I've had a word with you I'll have that work down at the school house finished by this afternoon, and I'm taking the night boat home back to town

Regine (mutters) Pleasant journey !

Engstrand Thank you, my child You see, tomorrow the orphanage is being opened, and I expect there'll be a lot of drinking and such like going on And nobody's going to say about Jacob Engstrand that he can't resist temptation when it comes along

Regine Huh !

Engstrand There'll be a lot of posh people here tomorrow And they are expecting Pastor Manders from town as well

Regine He'll be here today

Engstrand There you are, you see Got to be damned careful I don't put my foot in it with him, you know

Regine Aha ! So that's it !

Engstrand So what's it !

Regine (looks hard at him) What are you going to

try and talk him into this time ?

Engstrand. Sh ! Are you crazy ? Me talk Pastor Manders into anything ? Oh no, Pastor Manders has been far too good to me for that. But look, what I really wanted to talk to you about was me going back home again tonight.

Regine. The sooner the better, as far as I'm concerned.[26]

Engstrand. Yes, but I want you to come with me, Regine.

Regine. (open-mouthed). You want me to ..what did you say ?[27]

Engstrand. I said I want you to come home with me.

Regine. (scornfully) Not likely ! You'll never get me coming home with you.

Engstrand. Oh ? We'll see about that.[28]

Regine. Yes, I will say we will. Me ? Who's been brought up here by a lady like Mrs. Alving...? Who's been treated like one of the family, almost...? Expect me to go home with you ? To a place like that ? Puh ![29]

Engstrand. What the devil...? Setting yourself up against your own father, you little bitch ?[30]

Regine. (mutters without looking at him) Often enough you've said I wasn't any concern of yours.

Engstrand. Huh! You are not going to bother your head about that...?

Regine. And what about all the times you've sworn at me and called me a...? Fi donc ![31]

Engstrand. I'll be damned if I ever used filthy language.[32]

Regine. Oh, I know well enough what language you used.[33]

Engstrand. Well, but only when I'd had a few..'h'm. Many are the temptations of this world,

Regine !

Regine Ugh !

Engstrand Or else when your mother started her nagging I had to have something to get my own back on her, my girl Always so stuck-up, she was (*Mimics*) '*let me go, Engstrand Let me be I was three years in service at Rosenvold, with Chamberlain Alving I was*' (Laughs) My God! She couldn t ever forget that the captain was made a chamberlain while she was in service there

हिन्दी अनुवाद

[बाग की ओर एक बड़ा कमरा जिसकी बायी दीवार मे एक और दायी दीवार मे दो दरवाज़े हैं, कमरे के बीचो-बीच एक गोल मेज़ है जिसके इधर उधर कुर्सियाँ हैं, मेज़ पर पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ पड़ी हैं। अग्रभाग मे बायी ओर एक खिड़की है, उसके पास एक छोटा सोफ़ा है, जिसके सामने काम करने की एक मेज़ रखी है। पृष्ठभूमि मे यह कमरा एक वनस्पतिगृह से जुड़ा है जिसकी दीवारें काँच की हैं, वनस्पतिगृह की दायी दीवार मे एक दरवाज़ा है जो बाग मे खुलता है। काँच की दीवार मे स नॉर्वे के ऊँचे नीचे, कटे-फटे समुद्री तट का एक उदासी भरा दृश्य धुँधला-सा दिखाई देता है जो बीच-बीच में अनवरत वर्षा मे छिप जाता है।

बढ़ई ऐंगस्ट्रैण्ड बाग के दरवाज़े पर खड़ा है। उसका बायाँ पैर टेढ़ा है और जूते के तले के नीचे लकड़ी का एक और तला लगा है। रेजिना बाग मे छिड़काव करने की खाली पिचकारी हाथ मे लिये उसे आगे बढ़ने से रोक रही है।]

रे० (धीमे स्वर मे) ठीक है—तुम चाहते क्या हो ? नही ! यही ठहरो —वर्षा मे एकदम तो भीगे हुए हो।

ऐंग० भगवान् की बरसा है बेटी।

रे० भगवान् की नहीं, शैतान की।

ऐंग० राम राम, कैसी बातें करने लगी हो, रेजिना ! (कमरे मे कुछ कदम लँगड़ाते हुए बढ़कर) पर मैं तुमसे कहना यह चाहता हूँ

रे० अपने उस ठूँठ की खट-खट बन्द करो ! छोटे मालिक ऊपर सोये हैं।

ऐंग० सोये हैं, इस समय ? अभी तो दिन है !

रे० तुम्हे इससे मतलब !

ऐंग० अब मुझे देखो—कल रात मैं ज़रा ज्यादा पी गया था।

यह कौन-सी नयी बात है !

कुछ कहो, हम सभी बड़े कमज़ोर इनसान हैं, बेटी।

सो तो हैं ही।

और देखो इस दुनिया मे ललचाने वाली चीज़ों की कमी नही, पर इससे सवेरे साढे पाँच बजे काम पर पहुँचने में मुझे देरी नहीं हुई।

यही ठीक भी है—और अब यहाँ स जाओ !

(कुछ कदम और बढकर) तुमसे बात पूरी किये बिना मैं नही जाने का। सुनो, आज स्कूल मे मेरा काम खत्म हो जायेगा। उसके बाद मैं रात के ही जहाज से शहर जा रहा हूँ।

(धीमे से) तुम्हारी यात्रा सुखद हो !

धन्यवाद, बेटी ! कल अनाथालय का उद्घाटन है, बड़ा जलसा होगा। शराब के भी दौर चलेंगे—मैं यह दिखा दूंगा कि जैकब ऐंगस्ट्रेण्ड को शराब का इतना लालच नहीं।

हा-हा !

बहुत-से बड़े-बड़े लोग जमा होंगे, मिस्टर मैण्डर्स भी शहर से आने वाले हैं।

वे आज आ जायेंगे।

ठीक, देखो ! उन्हें मैं अपने खिलाफ कुछ भी कहने का मौक़ा नही देना चाहता।

तो यह बात है ?

क्या बात ?

(उसे ग़ौर से देखते हुए) इस बार तुम उन्हें कौन-सा चकमा देने वाले हो ?

पागल हुई हो ? मैं चकमा दूंगा उन्हें ! नही, मिस्टर मैण्डर्स ने मेरे साथ बड़ी भलाई की है। इसी बारे में तो तुमसे बात करना चाहता था। मह रहा था मैं आज रात ही घर लौट रहा हूँ—

मेरी तरफ से जितनी जल्दी जाओ उतना ही अच्छा है।

पर मैं चाहता हूँ तुम भी मेरे साथ चलो, रेजिना।

(अवाक् होकर) मैं, तुम्हारे साथ चलूँ ?

हाँ, मैं चाहता हूँ तुम मेरे साथ घर चलो।

(घृणा के साथ) मुझ से यह कभी नही होगा।

अच्छी बात है, देखेंगे।

हाँ, खूब देख लेना ! यहाँ मिसेज़ ऐल्विंग द्वारा पालन-पोषण के बाद, उनसे घर जैसा व्यवहार पाने के बाद, तुम सोचते हो मैं तुम्हारे साथ

घर जाऊँगी—वैसे घर मे वापस लौटूँगी ? तुम्हारा दिमाग़ खराब है !

ऐंग० : यह कैसी बात करती हो तुम ! अपने पिता की बात नही मानोगी ?

रे० · (उसकी ओर देखे बिना ही, बड़बड़ाते हुए) तुम तो कहते ही हो कि तुम्हें मुझ से कोई मतलब नही—

ऐंग० : वह बात छोडो।

रे० : कितनी ही बार तुम मुझे कोस चुके हो और मुझे—मुझसे न जाने क्या-क्या कह चुके हो !

ऐंग० : कोई गन्दी बात मैंने कही ?

रे० : मैं खूब जानती हूँ कौन-सी बातें तुमने कही हैं !

ऐंग० खैर, हो सकता है—मेरा दिमाग उस समय ठिकाने न रहा हो—हूँ हूँ ! इस दुनिया मे ललचाने वाली चीजों की कमी नही, रेजिना।

रे० . ओफ !

ऐंग और फिर तुम्हारी माँ मेरा दिमाग खराब कर देती थी। उसे सीधा करने के लिए कोई-न-कोई रास्ता तो मुझे ढूँढना ही पडता था। कैसी बनती थी ! (नकल उतारते हुए) "मुझे जाने दो ऐंगस्ट्रेण्ड ! छोडो मुझे ! खबरदार ! मैंने तीन वर्ष रोज़ेनवौल्ड में सरदार ऐल्विग के घर बिताये हैं !" (हँसता है) हे भगवान् ! वह कभी भूलती ही न थी कि उसकी नौकरी के दिनो मे ही कप्तान ऐल्विग सरदार बने थे !

अब इस अनुवाद की कुछ बातो पर विचार किया जा सकता है। जिन अंशो पर विचार किया जा रहा है उनपर अंक लगे हैं।

1. Garden room का सामान्य अर्थ 'बाग का कमरा' लगता है किन्तु उसका अनुवाद 'बाग की ओर का कमरा' किया गया है, जो ठीक है।
2 stands का अनुवाद 'है' किया गया है। स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा मे अनुवाद करते समय शब्दानुवाद न करके लक्ष्य भाषा के सहज प्रवाह का इसी प्रकार ध्यान रखना चाहिए।
3. with chairs round it का अनुवाद 'इधर-उधर कुर्सियाँ' बहुत ठीक नही लगता। इसका अनुवाद होना चाहिए था, 'जिसके चारो ओर कुर्सियाँ हैं'।
4 Periodicals and newspapers का अनुवाद 'पत्रिकाएँ और समाचार-पत्र' भी हो सकता था, किन्तु 'पत्र-पत्रिकाएँ' अधिक अच्छा अनुवाद है, क्यो कि हिन्दी मे इसी का अधिक प्रयोग होता है। अनुवादक को अन्य बातें समान होने पर, बहुप्रयुक्त शब्दावली का ही प्रयोग करना चाहिए। मुख्यतः नाटक के अनुवाद मे यह और भी आवश्यक है, क्योकि नाटक की भाषा बोलचाल की भाषा होती है।

5. Downstage का अनुवाद, मच-कला से अपरिचित व्यक्ति 'मच से नीचे' या कुछ और करता किन्तु चूंकि अनुवादक मच-कला से परिचित है, अतः उसने 'अग्रभाग में' अनुवाद किया है। यो इसका अनुवाद 'मच के अगले भाग मे,' शायद और अच्छा होता।
6 Extensively glazed का अनुवाद 'कांच की' बहुत ठीक नहीं लगता। चमक बिना शीशे के भी आ सकती है। इसका ठीक अनुवाद करने के लिए यह जानना जरूरी हो सकता था कि नारवे (इब्सन यही के थे) मे उस काल मे चमकीली दीवालें कैसे बनती थी। किन्तु आगे की पक्तियो मे 'शीशे की दीवाल' का उल्लेख है, अत यहाँ यह अनुवाद ठीक है। इस प्रकार अनुवादक को कभी कभी अनुवाद मे आगे-पीछे के सदर्भ से किसी अभिव्यक्ति के ठीक अर्थ का पता लगाना आवश्यक हो जाता है।
7. मूल मे gloomy प्रारभ मे हैं, किन्तु अनुवाद मे बाद मे है जो हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है।
8 यहाँ अनुवाद मे 'बढई' जोड दिया गया है जो मूल में नहीं है। वह बढई ही है, अत पहले से परिचय के लिए अनुवादक ने ऐसा किया है, यद्यपि इसे जोडने की कोई बहुत आवश्यकता नही थी।
9 इसे अनुवादक छोड गया है। छोडना चाहिए नहीं था, 'कुछ जोडा जा सकता था।
10 यह शब्द भी अनुवाद मे छूट गया है। इसके लिए 'और' जोडना चाहिए था।
11 keeping her voice low का 'धीमे स्वर मे' अनुवाद मूलबद्ध न होते हुए भी बहुत अच्छा है। यहाँ अनुवादक ने हिन्दी नाटको की प्रयोग-परपरा का ध्यान रखा है। इसका आशय यह हुआ कि अनुवादक को इस बात से भी परिचित होना चाहिए कि विशिष्ट सदर्भों मे लक्ष्य भाषा की प्रयोग-परपरा क्या है?
12. इसके अनुवाद मे 'ठीक है' जोडना ठीक है। आगे 'नही' जोडना भी उपयुक्त है। इस प्रकार अनुवादक लक्ष्य भाषा के सहज प्रयोग के अनुसार शब्दो आदि को जोडने-छोडने के लिए स्वतत्र है, किन्तु भाव या अर्थ जोडने-छोडने को नही। अतिम वाक्य के you को भी अनुवादक ने छोड दिया है। 'तुम' रखने से वाक्य मे वह सहजता नहीं रह जाती। यहाँ स्पष्ट ही अनुवादक जोडकर, छोडकर और बदलकर अनुवाद को ऐसा रूप देना चाह रहा है कि वह अनुवाद न लगकर मूल लगे।
13. यहाँ 'अपनी' तथा 'मेरी' को छोडना नही चाहिए था। इससे 'बल' की अभिव्यक्ति होती जो मूल मे है।
14 इसके अनुवाद में बहुत स्वतत्रता बरती गयी है। होना चाहिए था 'तुम्हारा

मतलब है शैतान की'।

15 यहाँ भी काफी स्वतत्रता बरती गयी है, किन्तु अनुवाद अच्छा है।

16 was के लिए 'हूँ' अनुवाद किया गया है। वस्तुत हिन्दी में 'हूँ' ही ठीक है। कुछ लोग ऐसे सदर्भ मे 'था' का प्रयोग करते हैं, किन्तु वह अँग्रेज़ी प्रभाव है।

17 'ठूँठ' का प्रयोग बहुत अच्छा है। अनुवादक सर्जक भी होता है। यहाँ अनुवाद उस सीमा पर पहुँच गया है।

18 इस वाक्य का भी मुक्तानुवाद अच्छा है।

19 अनुवाद पूर्णत मुक्त है। अच्छा है। यों 'यह तो मैं खूब समझता हूँ' अथवा 'यह तो मुझे भी विश्वास है' भी हो सकता था।

20 well के लिए 'कुछ कहो' से अच्छा होता 'कुछ भी कहो' क्योकि इस सदर्भ मे जिस बल की आवश्यकता है, वह 'भी' के बिना नही आ सकता।

21 all of us को 'सभी' के रूप मे पूर्ववर्ती वाक्य मे डाल देने से अभिव्यक्ति मे अच्छा कसाव आ गया है। साथ ही वह हिन्दी मुहावरे के अनुरूप भी हो गयी है।

22 यहाँ मुक्तानुवाद अनिवार्य था, क्योकि हिन्दी मे इस प्रसग में 'सो तो है ही' या 'सो तो ठीक ही है' जैसी अभिव्यक्तियाँ ही प्रयुक्त होती हैं।

23 yes, yes के लिए 'अच्छा, अच्छा शायद अधिक अच्छा होता।

24 यह वाक्य अनुवाद में छोड दिया गया है। होना चाहिए था 'मैं यहाँ तुम से मिलने के लिए नहीं खड़ी हूँ।'

25 इसका अनुवाद 'क्यो' नही है। होना चाहिए था 'क्या कहा ?'

26 इसके अनुवाद मे 'है' अनावश्यक है।

27 अच्छा अनुवाद होता 'क्या कहा ? मैं' और तुम्हारे साथ चलूँ!'

28 'अच्छी बात है, देख लेंगे' अधिक अच्छा अनुवाद होता।

29 इसके लिए 'छि' अधिक उपयुक्त होता।

30 'चुड़ैल की बच्ची कही की' अच्छा अनुवाद हो सकता था।

31 इसका अनुवाद नही हुआ है। शायद 'शर्म आनी चाहिए' होना चाहिए।

32 मैं जहन्नुम मे जाऊँ अगर मैंने कभी ऐसी गन्दी जबान निकाली हो।' शायद अधिक अच्छा अनुवाद होता।

33 मैं खूब जानती हूँ कि तुमने कैसी कैसी जबानें निकाली हैं।

ऊपर जो बत्तीस-तैंतीस बिन्दुओं को लेकर कुछ बातें कही गयी, उनसे कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं

(क) नाटक के अनुवादक को रगमच का सामान्य ज्ञान तो होना चाहिए। स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा के रगमच का भी ज्ञान होना चाहिए ताकि वह

मूल लेखक के संकेतों को पकड़कर लक्ष्य भाषा में उनका ठीक रूपान्तरण कर सके।

(ख) अनुवादक को लक्ष्य भाषा में बातचीत के विषयानुसार सहज लहजे और मुहावरे से भली भाँति परिचित होना चाहिए ताकि अनुवाद में कृत्रिमता न आने पाये।

(ग) किसी पूरे नाटक का अनुवाद हर दृष्टि से आदर्श होना बहुत कठिन है। उसमें सुधार की गुंजाइश बनी रहती है। अत: नाटक के अनुवाद को लक्ष्य भाषा के सहज मुहावरे में ढालने के लिए बार-बार पढ़ना चाहिए। यदि दो-एक और लोगों को भी बिना मूल दिखाये पढ़ा लिया जाये तो और भी अच्छा हो।

(घ) संवाद के अनुवाद में स्रोत भाषा की छौंक आ जाने का खतरा रहता है, उससे बचना चाहिए तथा इसके लिए विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए।

(ङ) नाटक के अनुवादक को उस संस्कृति से भली भाँति परिचित होना चाहिए, जिस संस्कृति से संबद्ध नाटक का अनुवाद वह कर रहा हो।

(च) कथा को घटाये-बढ़ाये बिना अनुवादक अभिव्यक्ति स्तर के कुछ तत्त्व जोड़ या छोड़ सकता है, क्योंकि जितना महत्त्वपूर्ण कथ्य होता है, उतना बाह्य आवरण नहीं।

(छ) नाटक में मुक्तानुवाद करने से डरना नहीं चाहिए, यदि कथ्य अक्षुण्ण रहे, तथा लक्ष्य भाषा में अनूदित सामग्री का लबो-लहजा प्रसंगोचित सहज संवाद के अनुरूप हो।

नाटक के अनुवादक के सामने कुछ ऐसी व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी कभी-कभी आती हैं, जिनसे पार पाना कठिन ही नहीं असंभव-सा हो जाता है। उदाहरण के लिए, प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में आज से काल की दूरी दिखाने तथा भाषिक वातावरण के निर्माण के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। मान लीजिए, कोई व्यक्ति उसका उर्दू या अंग्रेजी में अनुवाद कर रहा है तो वह क्या करेगा ? क्या उस प्रकार की शब्दावली इन भाषाओं में मिल सकती है ? शायद नहीं। किन्तु क्या बिना ऐसे शब्दों के अनुवाद वास्तविक अर्थों में मूलनिष्ठ अनुवाद बन सकेगा ? कदापि नहीं।

ऐसा ही एक दूसरा प्रश्न भी है। नाटक में संबोधन प्राय: प्रयुक्त होते हैं, जो संस्कृति से संबद्ध होते हैं, अत: उनका अपना विशिष्ट अर्थ होता है। उदाहरण के लिए, 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसाद ने वत्स, करुणामूर्ति, भगवन्, नाथ, आर्यपुत्र, देव, प्रियतम, प्रिये, तथागत, वैद्यराज, देवि, देवी, रानी, पृथ्वीनाथ, सम्राट्, रमणी, मूर्तिमती करुणे, श्रीमन् जैसे संबोधनों का प्रयोग किया है। पूरी अर्थवत्ता के साथ यूरोपीय या उर्दू-फारसी भाषाओं में इनका अनुवाद कितना कठिन है,

कहने की आवश्यकता नही।

कभी-कभी सबोधनो से वक्ता की स्थिति का भी सकेत दिया जाता है। उस दृष्टि से अनुवाद और भी कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए, सुशिक्षित व्यक्ति कहेगा—'देवि !' और सामान्य व्यक्ति 'देवी !' अब भला यह सूक्ष्मार्थ-भेद दूसरी सस्कृति की भाषाओ मे कैसे उतारा जा सकता है !

अभिवादन के शब्दो की भी यही स्थिति है। नमस्ते, नमस्कार, प्रणाम, दंडवत, राम-राम, आदि एक नही हैं। यह अर्थ-भेद अभारतीय भाषाओ मे ला पाना असभव है। ऐसे ही good morning, good noon, good evening, good night का हिन्दी आदि मे ठीक अनुवाद असभव है।

हर भाषा की अपनी प्रयुक्तियाँ (registers) तथा शैलियाँ (styles) होती हैं। कोई आवश्यक नही कि सभी भाषाओ मे उस दृष्टि से समान अन्तर हो। ऐसी स्थिति मे अनुवाद मे वह अन्तर ला पाना असभव है। मान लीजिए, कोई हिन्दी नाटक है। उसमे एक पात्र सस्कृत का पडित है, अतः वह सस्कृत मिश्रित हिन्दी बोलेगा, दूसरा डॉक्टर है, अत. उसकी भाषा मे बीच-बीच कोड-मिश्रण (अंग्रेजी शब्दो का आना) होगा, तीसरा मौलवी है, अत वह अरबी-फारसी मिश्रित शैली का प्रयोग करेगा और चौथा एक सामान्य मजदूर है, अत. बोलचाल की हिन्दुस्तानी बोलेगा। अब क्या अंग्रेजी, रूसी या जर्मन आदि मे इन शैलीय भेदो का ठीक रूपातरण सभव होगा ? कदापि नही।

इस प्रकार नाटक का अनुवाद करके स्रोत भाषा की सामग्री की पूरी अर्थवत्ता, सहजता, उसकी सास्कृतिक गरिमा, उसका पूरा बल और उसका शैलीय सौन्दर्य—सब-कुछ ला पाना काफी कठिन या प्रायः असम्भव काम है। किन्तु, इसके बावजूद अनुवाद होते हैं, होते रहे हैं, और होते रहेंगे। ऐसी स्थिति मे अनुवाद तो करना ही होगा, *यदि ऊपर सकेतित बातो का ध्यान रखा जा सके* तथा कठिनाइयो के प्रति सतर्क रहा जा सके तो अनुवाद अधिक अच्छा हो सकता है।

राजेन्द्रप्रसाद

तुलसी : अनुवादक के रूप में

अनुवाद एक ऐसी सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो चिन्तन के साथ-साथ चलती रहती है। चिन्तन-मनन करते-करते चिन्तक के मन में एक विशिष्ट दृष्टिकोण का आविर्भाव होता है और तल्लीनता की स्थिति में वह जो कुछ भी लिखता है वह उस ऋण के समान होता है जो उसने मूल से ग्रहण कर पूँजी के रूप में एक सृजन-शील व्यापार में लगा दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसने ऋण का सुचारु रूप से प्रयोग किया है। उसके इस कार्य को हम अचेष्ट अनुवाद-कार्य की कोटि में रख सकते हैं। अनुवाद-कार्य की दूसरी स्थिति वह है जिसे हम 'सचेष्ट अनुवाद' के नाम से अभिहित कर सकते हैं।

अनुवाद की जो परिभाषाएँ की गयी हैं वे 'सचेष्ट अनुवाद' के सदर्भ में ही हैं। इस प्रकार हमने अनुवाद को कूपमण्डूक बना दिया पर सत्य तो यह है कि अनुवाद-कार्य अगाध समुद्र की उफनती हुई वह वीचि है जो बाहर भिन्न तो प्रतीत होती है परन्तु उसका जो कुछ होता है वह (मूल) समुद्र का ही होता है।

अनुवाद का यह विस्तृत रूप हमें काशिका वृत्ति[1] में देखने को मिलता है—

'प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन संकीर्तनमात्रमनुवादः'—अन्य प्रमाण से भली-भाँति जानी हुई बात का शब्द द्वारा कथन ही अनुवाद मात्र है।

वात्स्यायन-भाष्य[2] में लिखा है—

'प्रयोजनवान् पुन कथन अनुवाद होता है।'

यहाँ 'प्रयोजनवान्' शब्द द्रष्टव्य है। प्रयोजन का अर्थ है—निमित्त या उद्देश्य अर्थात् पहले जो बात कही गयी है उसे सोद्देश्य पुन कहना ही अनुवाद है।

---

1 पाणिनीय 'अष्टाध्यायी' पर वामनजयादित्य द्वारा रची गयी प्रसिद्ध वृत्ति। इसमें बहुत-से सूत्रों की वृत्तियाँ और उनके उदाहरण पूर्वकालिक आचार्यों के वृत्ति-ग्रन्थों से भी दिये गये हैं।

2 वात्स्यायन भाष्य, 2 I 68

विश्व के प्रसिद्ध साहित्यकारों ने अनुवाद के इसी रूप को अपनाया है और तुलसीदास भी उनमें से एक हैं। राम-कथा के उद्गम, पल्लवन और 'मानस' में उसके संघटन आदि से स्पष्ट है कि राम-कथा मानसकार के मस्तिष्क की कल्पना-प्रसूत कथावस्तु नहीं है, बल्कि वह अत्यन्त प्राचीन काल से व्यापक रूप में चली आती हुई परम्परागत कथा है, 'रामचरितमानस' के अध्ययन से हम तुलसी की दृष्टि-विस्तार-क्षमता, सारग्राहिणी प्रवृत्ति, काव्य-सृजन की कुशलता और युग की परिस्थितियों की अनुभूतियों की विशेषता का पता चलता है।

कोई भी कवि या रचनाकार जब लिखने बैठता है तो उसकी सहायता के लिए पूर्ववर्ती रचनाकार भागकर उसके बुद्धि-कक्ष में प्रवेश कर जाते हैं। यही कारण है कि उसकी रचना-सृष्टि में पूर्ववर्ती रचनाकारों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। लिखते समय वह प्राय जाने-अनजाने अपने पूर्ववर्तियों के काव्य से शब्द, उक्तियाँ, वृत्त, भाव आदि को यथारूप ग्रहण कर लेता है।

तुलसीदास ने भी कहीं जान-बूझकर और कहीं अनजाने अनुवाद किया है, जैसा कि डॉ० विद्या मिश्र लिखती हैं—

"आपने अपने 'मानस' में विविध राम काव्यों की ही नहीं, अपितु अन्यान्य काव्य ग्रंथों की सूक्तियों एवं मनोरम वाक्यावलियों को अपने 'मानस' में रत्न-सम प्रभा प्रदान की है। कहीं अविकल अनुवाद के रूप में, कहीं भावानुवाद के रूप में, कहीं कथा-संक्षिप्ति के रूप में, कहीं कथा विस्तार के रूप में अन्य ग्रन्थों से आधार लेकर मानस की मौलिक प्रबन्ध-योजना की है। इन ग्रन्थों में आधार ग्रहण करते समय तुलसी ने जागरूकता का परिचय दिया है।"[1] उन्हीं के कथनानुसार—'संग्रह त्याग न बिनु पहचाने।' [मानस 1-5-2]

तुलसीदास ने जो अनुवाद किया है, इसका प्रमाण रामनरेश त्रिपाठी इस प्रकार देते हैं—

"खोजने से संस्कृत-ग्रन्थों में 'रामचरितमानस' के बहुत-से दोहों, सोरठों, छन्दों और चौपाइयों के मूल मिल जायेंगे। × × × इनके सिवा संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उन्होंने उनका रूपान्तर करके 'मानस' में भर दिया है। कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से लिये गये हैं तो *उसके आगे की* चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं और उसके भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति-ग्रन्थ के भाव है। ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है मानो संस्कृत के दो ढाई सौ ग्रन्थों के लाखों श्लोकों पर उनका एक सम्राट् की तरह

1. 'वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन', पृ० 43

अधिकार था, और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वही बुला लेते थे।''[1]

अत सिद्ध हुआ कि तुलसीदास ने जो काव्य-सृष्टि की, इसके लिए वे पूर्ववर्ती कवियो के ऋणी हैं। वे स्वय स्वीकारते हैं—

नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।

बालकाड, सातवाँ श्लोक।

तुलसी ने किन ग्रन्थो से अनुवाद किया है और उस अनुवाद का स्वरूप क्या है—इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। रामनरेश त्रिपाठी ने लगभग बहत्तर ग्रन्थो की सूची दी है जिनमे से प्रमुख ग्रन्थ ये हैं—

श्रीमद्भागवत पुराण, गीता, अध्यात्म रामायण अगस्त्य रामायण, अग्निवेश रामायण, आनन्द रामायण, चम्पू रामायण, वाल्मीकि रामायण, अद्भुत रामायण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, उत्तररामचरित, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण, सुभाषित रत्न भाडागार, मार्कण्डेयपुराण, मातृकाविलास, रघुवश, वसिष्ठ सहिता, गर्ग-सहिता गालव-सहिता, आदि।

तुलसी ने अनुवाद करते समय जो विधि अपनाई वह अपने आपमें विशिष्ट महत्व रखती है। उन्होने कही शब्दानुवाद कर दिया है तो कही भावानुवाद। इसके अतिरिक्त ऐसे उदाहरण भी मिल जाते हैं जहाँ उन्होने रूपान्तरण का सहारा लिया है। रूपान्तरण में रचना के मूल विषय को परिवर्तन और परिवर्धन के साथ पेश किया जाता है। वस्तुत कवि की प्रतिभा भी ऐसे अनुवाद मे निखरती है। 'परिवर्तित ध्वनि के कारण वे प्राचीन अर्थ भी वैसे ही नवीन लगते हैं जैसे मधुमास में द्रुमो की शोभा नवीन लगने लगती है। यदि ध्वनि के परिवर्तन से अर्थ प्रस्तुत किया गया है तो वह पूर्व-प्रयुक्त होते हुए भी उसी प्रकार बासी अथवा पुनरुक्त नहीं है जिस प्रकार प्रियतमाओ के हाव-भाव, फिर-फिर वही होते हुए भी सीमित अथवा पुनरुक्त नही समझे जाते''—

'न च तेषा घटते वधिनंचते दृश्यन्तेकथमपि पुनरुक्ता
ये विभ्रमा प्रियाणामर्थावा सुकविवाणीनाम्।'[2]

तुलसीदास ने भी परम्परा से चलती हुई राम-कथा को फिर से दुहराया है। परन्तु इसे पढ़कर पाठक के मन म एक नयी चेतना उत्पन्न होती है। अब हम एक-एक आधार-ग्रथ को लेकर उक्ति-साम्य का परीक्षण करेंगे।

1 'तुलसी और उनका काव्य', पृ० 124
2 आनंदवर्धन, 'ध्वन्यालोक', 47

आनन्द रामायण.[1]

धृत्वा धैर्यं गृह प्राह विषाद त्यज साम्प्रतम्।
त्व सुमत्र सदा विद्वान धैर्यधर परार्थवित्॥

अयोध्याकाड, पृष्ठ 180

रामचरितमानस

धीरज धरि तब कहहि निषादू।
अब सुमंत्र परिहरहु विषादू।
तुम पडित परमारथ ज्ञाता।
धरहु धीर लखि विमुख विधाता॥

अयोध्याकाड 142—1-2

यहाँ मूल का भाव-विचार यथावत् अवतरित हुआ है। वर्णसाम्य दृष्टव्य है। कोई भी अश छूटने नही पाया। 'धृत्वा के लिए 'धरि', 'धैर्य' के लिए तद्भव शब्द 'धीरज', 'त्यज' के लिए 'परिहरहु', 'विषाद' के लिए 'विषादू', 'परार्थवित्' के लिए 'परमारथ-ज्ञाता' शब्द आये हैं। इन दोनो उक्तियो मे पूर्ण साम्य होते हुए भी दैववैपरीत्य कारणोल्लेख की विशेषता है। भाषा सर्वसाधारण है, चौपाई छन्द अपनाया है। 'धरहु धीर' एव 'धृत्वा धैर्य' मे पूर्ण साम्य है।

आनन्द रामायण

सीतानुजयुतो रामो राजते पर्णमदिरे।
भक्तिज्ञान विरागश्च राजन्ते देहिनो यथा॥

अयोध्याकाड, पृष्ठ 345

मानस

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भक्ति ज्ञान वैराग्य जनु सोहत धरे सरीर॥

यहाँ तुलसीदास ने आनन्द रामायण की उक्ति को ज्यो का त्यो रख दिया है। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने 'सचेष्ट' अनुवाद किया है। 'सीता' के लिए 'सीय', 'अनुज' के लिए 'अनुज', 'रामो' के लिए 'प्रभो', 'राजते' के लिए 'राजत', 'पर्णमदिरे' के लिए 'परन कुटीर', भक्ति ज्ञान' के लिए 'भक्ति ज्ञान', 'विराग' के लिए 'वैराग्य', 'राजन्ते' के लिए 'सोहत',

1 इसमें अनेक विचित्र कथाओ का विवरण मिलता है।

'देहिनो' के लिए 'सरीर', और 'यथा' के लिए 'जनु' शब्द दिया है। यहाँ 'सीता' की अपेक्षा 'सीय' में अधिक मधुरता है। 'राम' के लिए उक्ति दी है। 'मदिर' की जगह 'कुटीर' शब्द प्रसगानुकूल है।

यहाँ पर राजेश्वर की एक उक्ति प्रसगानुकूल है अत उसे उद्धृत करना सगत होगा—

नास्त्यचोर कविजनो नास्त्यचोरोवणिग्जन ।
स नन्दति विनावाच्य योजनाति निगूहितम् ।

काव्य मीमासा-एकादश

"बनिया और कवि चोरी नही करते—यह कहना सभव नही, पर जो इस चालाकी स चोरी करता है कि दूसरो को पता नही लगने देता, वह वास्तव मे प्रशसनीय है।"

तुलसीदास ने हालाकि शब्दश अनुवाद किया है फिर भी उसकी उपेक्षा नही की जा सक्ती। आचार्य आनन्दवर्धन लिखते हैं—

'अक्षरादिरचनेव योज्यते यत्र वस्तुरचना पुरातनी ।
नूतने स्फुरति काव्यवस्तुनि व्यक्तमेव खलु स न दुष्यति ।।'

ध्वन्यालोक—4 15

नवीन चमत्कारयुक्त काव्य में प्रयुक्त प्राचीन वस्तु के स्पष्ट दिखायी देने पर भी उसे उसी प्रकार दोपरहित मानते हैं, जैस वर्णमाला का स्पष्टतया बार-बार प्रयोग दोपरहित माना जाता है।

अत तुलसी ने जो कुछ किया वह प्रशसनीय है।

वाल्मीकि रामायण

देशे-देशे कलत्राणि देशे-देशे च बान्धवा ।
तुतु देश न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदर । 6 102 2

मानस

सुतवित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस विचार जिय जानहु ताता। मिलत न जगत सहोदर भ्राता।

तुलसी ने यहाँ भावानुवाद कर दिया है। इसे हम बिम्ब-प्रतिबिम्ब अनुवाद भी कह सकते हैं। ऐसा लगता है जैसे तुलसी की उक्ति वाल्मीकि की उक्ति का प्रतिबिम्ब हो। देशे-देशे' के लिए तुलसी ने 'जग' शब्द दिया है।

'तुतु देश न पश्यामि' को छोड दिया है और उसकी जगह 'अस विचार' रख दिया है। 'भ्राता सहोदर' के लिए यथावत् 'सहोदर भ्राता' रख दिया है। मूल और अनुवाद के कथ्य म कोई अन्तर न होने पर भी कथन-शैली में भेद है।

अध्यात्म रामायणः

सतामन स्वच्छजल पद्मकिंजल्कवासितम् । 4 14

मानस

सत हृदय जस निर्मल वारी।

यहाँ तुलसीदास ने उपमा वही रखी है पर शब्द अपने रखे हैं। 'सता' के लिए 'सत', 'मन.' के लिए 'हृदय', 'स्वच्छजल' के लिए 'निर्मल वारी' शब्द रखे हैं।

अध्यात्म रामायण

तस्मिनकाले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दन ॥
क्षालयामि तव पादपकज नायदारूदृषदो क्मिन्तरम् ।
मानुषीकरण चूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रयीयसी ॥
पादाम्बुज ते विमल हि कृत्वा पश्चात्परतीरमहनयामि ।
नौचेत्तरी सघुवती मलेन स्याच्चेद्विभो विद्वि कुटुम्बहानि ॥ 1 6 2-4

मानस मे यही बात तुलसीदास ने इस प्रकार कही है—

माँगी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहु सब कहई । मानुप करनि मूरि कुछ अहई ॥
छुअत सिला भई नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उडाई ॥
येहि प्रतिपालउ सब परिवारू । नहिं जानौं कछु और कबारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गावहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥
2 100 3-8

तुलसीदास की ये पक्तियाँ भावानुवाद के अन्तर्गत आती हैं। तुलसीदास की सारग्राहिका शक्ति एव कविप्रतिभा इन पक्तियो में परिलक्षित होती है। 'मानुपीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रयीयसी के अनुवाद मे वाग्विस्तार है—

चरन कमल रज कहु सब कहई । मानुप करनि मूरि कछु अहई ।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥

'चूर्णम्' के लिए 'मूरि', 'कथा प्रयीयसी' के लिए 'कहु सब कहई', 'मानुपीकरण' के लिए 'मानुपकरनि' शब्द दिया है। 'पादाम्बुज' के लिए 'पद पदुम' शब्द अधिक सार्थक है। पदुम, कमल को भी कहते हैं और निधि को भी। यहाँ एक शब्द दोनो अर्थों में लग सकता है। 'कबारू' शब्द फारसी के—'कारोबार'

से निकला है जिसका अर्थ है—'काम-काज'। 'कुटुम्ब हानि' को इन्होंने दूसरे ढंग से कहा है—'नहिं जानौं कछु और कबारू' अर्थात् मैं कोई अन्य काम नहीं जानता।

श्रीमद्भागवतपुराण:

जिह्वासती दार्दुरकेव सूत।
न गोपगायत्युरुगायगाथा.॥ 2 3 20

मानस

जौं नहिं करै राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना॥

तुलसीदास ने यहाँ शब्दानुवाद किया है और ज्यों की त्यों उपमा भी दी है। 'दादुर' शब्द ज्यों का त्यों ले लिया है, 'इव' के लिए 'समाना', 'जिह्वा' के लिए 'जीह' शब्द दिया है। 'आदि पुराण' में भी ऐसी ही बात है—

या वन्देन हरिनाम गुण
सा प्रोच्यते विपुलदर्दुरजिह्वा। 8.28

लगता है, तुलसी ने इसी उक्ति को ज्यों का त्यों रख दिया है।

श्रीमद्भागवतपुराण:

बिलेवतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वत. कर्णपुटे नरस्य।

'जो मनुष्य भगवान् श्री कृष्ण की कथा नहीं सुनता, उसके कान साँप के बिल के समान हैं।'

मानस

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना।
श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥ 1.1.32

तुलसी ने शब्दानुवाद किया है। 'ये न शृण्वत. कर्णपुटे नरस्य' के लिए 'जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना' दिया है। 'ये नरस्य' के लिए 'जिन्ह' शब्द पर्याप्त है।

श्रीमद्भागवतपुराण:

भार· परं पट्टकिरीटजुष्ट—
मप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुन्दम्। 2.3 21

'जो सिर कभी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणो मे झुकता नही, वह रेशमी वस्त्र से सुसज्जित और मुकुट से युक्त होने पर भी बोझा मात्र है।'

मानस

ते सिर कटु तबुरि समतूला।
जे न नमत हरि गुर पद मूला।

तुलसी ने यहाँ भावानुवाद भी किया है और शब्दानुवाद भी। शब्दानुवाद तो दूसरी पक्ति मे है, 'मप्युत्तमाग न नमेन्मुकुन्दम्' के लिए 'जे न नमत हरि गुर पद मूला।' पहली पक्ति का भाव वही है पर उपमा बदल दी है।

गीता

चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनोर्जुन।
उदारा. सर्व एवैतु ज्ञानी त्वात्मैवमे मतम्। 7.16,18

मानस

रामभक्त जग चारिप्रकारा।
सुकृति चारिउ अनघ उदारा॥
ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा॥ 1 21.5-6

तुलसी ने यहाँ शब्दानुवाद कर दिया है। 'चतुर्विधा' के लिए 'चारिप्रकारा' 'सुकृति' के लिए 'सुकृति', 'सर्व एवैतु' के लिए 'चारिउ', 'उदारा' के लिए 'उदारा' शब्द दिये हैं। 'ज्ञानी त्वात्मैवमे मतम् के लिए 'ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा' का प्रयोग ठीक तो है पर जो भाव 'त्वात्मैव' अर्थात् 'सारूप्य भक्ति' छिपा है वहाँ तुलसी ने मात्र 'विशेष पियारा' कह दिया है।

गीता

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे॥ 4.7

'हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ क्योंकि साधु पुरुषो का उद्धार करने के लिए और दूपित कर्म करने वालो का नाश करने के लिए तथा धर्मस्थापन करने के लिए मैं युग-युग मे प्रकट होता हूँ।'

मानस

जब-जब होइ धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब-तब हरि धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा॥
1 120 6 8.

तत्कालीन परिस्थितियों से क्षुब्ध होकर तुलसी को 'गीता' का यह उपदेश स्मरण हो आया होगा। इसलिए उन्होंने उस श्लोक को उलट-पुलट कर अपनी भाषा में उद्धृत कर दिया है पर भाव वही रहे हैं। पहली पंक्ति का इन्होंने शब्दशः अनुवाद कर दिया है—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति'
'जब-जब होइ धर्म की हानी।'

दूसरी पंक्ति में 'अभ्युत्थानमधर्मस्य' को छोड़ दिया है और 'तदात्मानं सृजाम्यहम्' के लिए भी कुछ नहीं दिया और इस भाव को उन्होंने 'संभवामि युगे-युगे' के साथ मिलाकर 'तब-तब हरि धरि विविध सरीरा' दे दिया है। 'परित्राणाय साधना' का शब्दानुवाद 'सज्जन पीरा' कर दिया है। 'हरि' शब्द विशिष्ट अभिप्राय से रखा गया है। 'हरि' का अर्थ है—हरण करनेवाला। इसी प्रकार 'कृपानिधि' शब्द भी प्रसंगानुकूल है। तुलसी ने मूल में कथित उद्देश्यों का सार-अनुवाद कर दिया है। तुलसी की सारग्राहिका शक्ति बहुत तीव्र थी। 'गीता' के अमर श्लोक को जन-भाषा में लाकर इन्होंने उसे फिर अमर बना दिया है।

शिवपुराण

अमुख विमुखा केचित्वे विद्वद्बहुमुखा गणा।
अकरा विकरा केचित्वे चिद्बहुकरा गणा।
अनेत्रा बहुनेत्राश्च विशिरा कुशिरास्तथा।
अकर्णा बहुकर्णाश्च नानावेष धरा गणा॥ 2 3 43 54-5

शिव विवाह के बरातियों का वर्णन तुलसी ने बिल्कुल ज्यों का त्यों कर दिया है।

मानस

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू।
बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना।
रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना॥ 1 93 7-8

यहाँ पर तुलसी ने 'विशिरा कुशिरा' के लिए कोई शब्द नहीं रखा और न ही

'नानावेपधरा गणा ' के लिए । 'रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना' अपनी ओर से बढा दिया है।

शिवपुराण

शृणु मद्वचन देवि विश्वसिति चेन्मन ।
तव रापमरीक्षा हि कुरु तत्र स्वया धिया ॥
विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्व सति प्रिये ।
गत्वा तत्र स्थितस्तावद्वटे भव परीक्षिका ॥ 2.2 24 43-44

मानस

जौ तुम्हरें मन अति सदेहू । तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहौं बट छाही । जब लग तुम्ह ऐहहु मोहि पाही ॥
जैस जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु विवेक विचारी ॥

1 52 1-3

तुलसीदास ने भावानुवाद किया है। 'शृणु मद्वचन देवि' का अनुवाद तुलसी ने नही किया है । 'न विश्वसिति चेन्मन ' के लिए 'जौ तुम्हरें मन अति सदेहू' प्रयोग किया है। 'परीछा' शब्द 'परीक्षा' के लिए रखा है। तीसरी पक्ति विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्व सति प्रिये को यथावत् रख दिया है, अर्थात्

'जैसे जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु विवेक विचारी' ॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण

ब्राह्मणानातु हृदय कोमल नवनीतवत् । 2 51 5

मानस

सत हृदय नवनीत समाना । 7 125 7

तुलसी ने शब्दानुवाद किया है। 'हृदय के लिए 'हृदय', 'नवनीतवत्' के लिए 'नवीनतसमाना' शब्द दिया है । 'ब्राह्मण' के लिए तुलसी ने 'सत' शब्द रखा है और 'कोमल' को त्याग दिया है क्योकि नवनीत तो होता ही कोमल है। अत उन्होंने 'नवनीन' से ही काम चला दिया है । सुयोग्य कवि पाठक की बुद्धि के लिए ऐसी बातें छोड ही देता है ।

भविष्यपुराण

मूक करोति वाचाल पगु लघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्द माधवम् ॥ 1 1 3

मानस

मूक होइ वाचाल पगु चढै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सु दयालु द्रवौ सकल कलिमल दहन ।।

तुलसीदास ने यहाँ शब्दानुवाद किया है । 'मूक' के लिए 'मूक', 'वाचाल' के लिए 'वाचाल', गिरिम्' के लिए 'गिरि', 'यत्कृपा' के लिए 'जासु कृपा' यथा-वत् रख दिये हैं । 'गहन' शब्द तुलसी ने अपनी ओर से जोड दिया है जो सार्थक एव प्रभावशाली है । 'लघयते' के लिए 'चढै' शब्द का प्रयोग किया है । 'वन्दे परमानन्द माधवम्' को बदलकर रखा है पर इससे भाव वही रहा है—'द्रवौ सकल कलिमल दहन' तुलसीदास यहाँ 'कलियुग के पाप' विमोचन के लिए प्रार्थना करते है ।

वामन पुराण

शरणागत यस्त्यजति स चाण्डालोऽधमो जन । 14 92

मानस

सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं विलोकत हानि ।।

तुलसी ने भावानुवाद किया है । साथ ही वाग्विस्तार से काम लिया है । 'शरणागत' के लिए 'सरनागत', 'यस्त्यजति के लिए 'जे तजहिं' ज्यो के त्यों अपना लिये हैं, शेष अपनी ओर से जोडा है। 'चाण्डाल' एव अधम' के लिए 'पाँवर और 'पापमय' का प्रयोग किया है ।

प्रसन्न राघव

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासे स्वकीयै ।
परभणितिषु तोष यान्ति सन्त कियन्त । प्रथम अ०, पृ० 7

मानस

निज कवित्त केहि लाग न नीका ।
सरस होइ अथवा अति फीका ।।
जे पर भनित सुनत हरषाही ।
जे बर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।

यहाँ तुलसीदास ने भावानुवाद किया है। 'अपि मुदमुपयान्तो' के लिए 'केहि लाग न नीका' तथा 'वाग्विलासे' के लिए कवित्त तथा 'स्वकीयै ' के लिए 'निज'

शब्द रखा है। इसी प्रकार 'परिभणितिपु' को यथावत 'पर भनित' अपना लिया है। 'तोप' के लिए 'हरषाहीं' शब्दानुवाद है। 'यान्ति सन्त. किमन्त' के लिए 'ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं' तुलसी के वाग्विस्तार को प्रकट करता है। एक विशेषता तुलसी में यह है कि वे अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा कुछ-न-कुछ जोड देते हैं जिससे उक्ति और भी प्रभावशाली हो जाती है। 'सरस होइ अथवा अति फीका' इसका प्रमाण है।

हनुमन्नाटक

पृथ्वि स्थिरा भव भुजगम धारयैना।
त्व कूर्मराज तदिद द्वितीय दधीया ॥
दिक्कुजरा कुरुत तत्रितये दिधीषा।
राम करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥ 1 29

मानस

दिसि कुजरहु कमठ अहि कोला।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं सकर धनु तोरा।
होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥

तुलसी ने यहाँ भावानुवाद किया है फिर कई शब्द ज्यो के त्यो अपना लिये हैं। 'पृथ्वि स्थिरा' के लिए तुलसी ने 'धरहु धरनि धरि धीर न डोला' का प्रयोग कर जहाँ वाग्विस्तार-क्षमता का प्रदर्शन किया है वहाँ आलकारिकता एव लयात्मकता का पुट भी दर्शनीय है। 'दिक्कुजरा' के लिए 'दिसि कुजरहु' शब्द का प्रयोग किया है। 'कूर्मराज' के लिए 'कमठ' शब्द दिया है।

अगस्त्य रामायण:

यो जन स्वच्छ हृदय स
मा प्राप्नोति नापर।
मह्य कपट दभानि
न रोचन्ते कपीश्वर.।

मानस

निरमल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

तुलसीदास ने 'अगस्त्य रामायण' की उक्ति ज्यो की त्यो 'मानस' मे रख दी। ऐसा लगता है, रचनाकार तुलसीदास ने 'मानस' रचते समय पूर्ववर्ती कवियो के भी ग्रन्थ अपने चारो ओर फैलाकर रखे हुए थे और जहाँ कही उपयुक्त जान पडा किसी ग्रन्थ की उक्ति को 'मानस' में दे दिया। 'यो जन स्वच्छहृदय स' का अनुवाद 'निरम्ल मन जन सो' किया है, 'मा प्राप्नोति नापर' के लिए उन्होने 'सो मोहि पावा' अनुवाद किया है। 'नापर' बल देने के लिए रखा गया था पर तुलसीदास ने उसे नही अपनाया। 'मन जन' से आलकारिकता आ गयी है। 'कपट' शब्द ज्यों का त्यो ले लिया है। 'दभानि' को छोड कवि ने 'छल छिद्र' कह दिया है क्योकि 'कपटी', 'छल' अथवा 'छिद्र' (दोष) से अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेता है। 'रोचन्ते' के लिए 'भावा' शब्द उपयुक्त है।

गालव-सहिता :

मित्रस्य दु खेन जना
दु खिता नो भवन्ति ये।
तेषा दर्शनमात्रेण
पातक बहुल भवेत्।

मानस :

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥

तुलसी ने शब्दानुवाद कर दिया है। 'मित्रस्य' के लिए 'मित्र', 'दु खेन' के लिए 'दु ख', 'दुखिता' के लिए 'दुखारी', 'जना' के लिए 'जे', 'नो' के लिए 'न', 'तेषा' के लिए 'तिन्हहिं', 'दर्शनमात्रेण' के लिए 'बिलोकत', 'पातक' के लिए 'पातक', 'बहुल' के लिए 'भारी' शब्द दिया है। जो बात 'दर्शनमात्र से ही' व्यक्त होती है, वह 'बिलोकत' से नही।

सुभाषित-रत्न-भाडागार :

सज्जनस्य हृदय नवनीत।
यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्॥
अन्य देह विलसत्परितापात।
सज्जनो द्रवति नो नवनीतम्॥

मानस :

सत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पै कहइ न जाना।
निज-परिताप द्रवै नवनीता। पर-दुख द्रवहिं सुसत पुनीता।

तुलसी ने भावानुवाद किया है। स्पष्ट है कि पहली पंक्ति को तो कवि ने ज्यों का त्यों रख दिया है—

'सज्जनस्य हृदय नवनीत'
'सत हृदय नवनीत समाना'

हाँ, तुलसी ने 'सज्जन' की जगह 'सत' रख दिया है जो अधिक सगत एव प्रभावशाली वन पडा है। सतो की महिमागान करते तुलसी अघाते नही थे—

'तुलसी सत सुअव तरु फूलफलहिं पर हेत।
इतते वे पाहन हनं उतते वे फल देत।

दूसरी पंक्ति—

'यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्' का वर्णन बहुत सुन्दर ढग से किया है—
'कहा कविन पै कहइ न जाना'।

वस्तुत तुलसी की कवि-प्रतिभा यहाँ परिलक्षित होती है। पहली पंक्ति मे तो 'तदलीकम् झूठ है कहकर ही बात समाप्त कर दी है परन्तु तुलसी ने कहा कि कवियो की उक्ति ठीक नही है। नीचे की दो पंक्तियो का भावानुवाद कर दिया गया है।

रघुवश

'वशीना रघूणा मन परस्त्री विमुख प्रवृत्ति'
'रघुवशियो का चित्त पराई स्त्री की ओर नही जाता।' सर्ग 14

मानस

नहिं लावहिं पर तिय मन दीठी।

तुलसी ने भावानुवाद कर दिया है। गृहीत भाव में 'दीठी' जोडकर तुलसी ने और गाभीर्य ला दिया है।

इस प्रकार हम देखते है कि तुलसीदास ने नाना ग्रन्थो से सहायता लेकर 'मानस' की रचना की। वस्तुत पुराणो, सहिताओ उपनिषदो, पूर्ववर्ती कवियो द्वारा लिखित विविध राम कथाओ से ही प्रमुख सहायता ली गयी है। तुलसी ने अनुवाद करते समय 'प्रतिबिम्ब कल्प पद्धति अपनायी है। 'प्रतिबिम्ब-कल्प' मे अर्थ एक ही होता है पर उस केवल दूसरे शब्दो मे, कभी-कभी दूसरी भाषा मे, और कभी सक्षेप के साथ विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। राजशेखर 'काव्य मीमासा मे लिखते हैं—

अर्थ स एव सर्वो वाक्यान्तर विरचनापर यत्र।
तद परमार्थ विभेद काव्य प्रतिबिम्बकल्प स्यात्।

काव्य-मीमासा, पृष्ठ 63

तुलसीदास ने सस्कृत के ग्रन्थो का सूक्ष्म अध्ययन किया था। रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं—

"सस्कृत नन्दन-कानन में विचरण करके तुलमीदास-रूपी मधुप ने समस्त फूलो का रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जाति को दान दिया है, उसकी तुलना ससार के किसी दान से नही की जा सकती।" इस दान मे उनका अपना कितना है और गृहीत कितना, इसका प्रमाण हमे तुलसी-काव्य एव विभिन्न सस्कृत ग्रन्थो का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् ही ज्ञात हो सकता है।

काव्यानुवाद की समस्याएँ उमर खैयाम के संदर्भ मे

काव्यानुवाद करना एक टेढी खीर है। कवि के हृदय मे तरगित कोमल भाव लहरियाँ कविता के रूप मे फूटकर बाहर आती हैं। इस प्रकार कविता का हृदय से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनुवाद करते समय अनुवादक के हृदय मे भी वे ही भाव लहरियाँ उसी वेग से तरगित हो, यह सम्भव नही। विक्टर ह्यूगो लिखते हैं—

'A translation in verse seems to me something absurd impossible'

सफल काव्यानुवादक वही माना जायेगा जो मूल कवि से साधारणीकरण कर ले। कविता का एक एक शब्द अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण होता है और स्थानापन्न शब्द में वह सौन्दर्य नही आ पाता। जैनेन्द्र के अनुसार, अनुवादक को मूल के व्यक्तित्व मे पहले अपने को खो देना होता है फिर उसी मे आत्म-भाव पैदा करके अपनी भाषा के माध्यम से उस भाषा-भाषी के प्रति अपने को भावार्पित करना पडता है।

काव्यानुवाद मे अनुवादक के सामने क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं, वह उनका किस प्रकार निराकरण करता है, एक-एक शब्द के अनुवाद के लिए उसे कितनी साधना करनी पडती है, इन सबका स्पष्टीकरण यहाँ उमर खैयाम की रुबाइयो के सदर्भ मे किया जा रहा है।

हकीम गयासुद्दीन अबुलफतेह उमर बिन-इब्राहीम खैयाम का जन्म ईसा की ग्यारहवी शताब्दी मे खुरासान देश के प्रधान नगर नैशापुर मे हुआ था। इनकी जन्म तिथि एव मृत्यु तिथि विवादास्पद है। मौलाना सुलेमान नदवी ने अपने ग्रन्थ 'खैयाम' (दारुल मुसन्नफीन, आज़मगढ) मे इनका जन्म लगभग 1048 ई० एव मृत्यु लगभग 1132 ई० मानी है। उमर खैयाम ने कितनी रुबाइयाँ लिखी— इसके बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। उपलब्ध रुबाइयो की सख्या 31 से लेकर 1000 तक है।

उमर खैयाम का नाम जिस विद्वान ने ऊँचा किया उसका नाम है—एडवर्ड फिटजेरल्ड। इस विद्वान का अनुवाद इतना लोकप्रिय हुआ कि परवर्ती अनुवादक उमर खैयाम के मूल का अनुवाद न कर अनुवाद का अनुवाद करते गये।

फिट्जेरल्ड ने खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद करते समय बहुत छूट ली है। वे शब्दानुवाद के पक्ष में नही थ। उन्होने स्वय एक स्थान पर लिखा है—'मेरा विश्वास है कि अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार सस्कार करना चाहिए मूसा भरे गीध की अपेक्षा मैं जीवित गौरैया चाहूँगा।'[1]

फ़िट्जेरल्ड के अँग्रेजी अनुवाद का आधार लेकर हिन्दी मे बच्चन[2], प० केशवप्रसाद पाठक[3], रघुवशलाल गुप्त[4] सुमित्रानदन पत[5] तथा मैथिलीशरण गुप्त[6] आदि कई विद्वानो ने अनुवाद किये हैं।

यहाँ खैयाम की मूल रुबाई लेकर उसके विभिन्न अनुवादों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

'रुबाई' शब्द अरबी भाषा का है और इसका अर्थ है—चार। रुबाई मे चार पद होते हैं जिसमे पहला, दूसरा और चौथा पद तुकांत एव तीसरा अतुकांत होता है। इसके अतिरिक्त ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'रुबाई मुक्तक काव्य का एक रूप है। इसमे क्रमबद्ध भाव विकास और प्रबन्धात्मक विचार-योजना के लिए स्थान नही। किसी भी भाव को चुभती हुई भाषा में कह देना ही रुबाई का उद्देश्य है।'

उमर खैयाम की एक रुबाई है—

"आमद महरे निदा ज़े मयखानाए मा
कि ए रिन्द खराबाती व दीवानाए मा
बरखज़ कि पुरकुनेम पैमानाए ज़े मय
जा पेश कि पुरकुनद पैमानाए मा।"[7]

अर्थात्—प्रात काल हमे अपनी मधुशाला मे आवाज़ आयी कि हे मदिरा पान करनेवाले व मेरे दीवाने! उठ! और मय स अपना प्याला भर ले। कहीं

1 Quoted in 'On Translation', page 277, Editor—Reuben A Brower

2 खैयाम की मधुशाला प्रथम संस्करण सुषमा निकुज, प्रयाग अप्रैल 1935

3 'रुबाइयात उमर खैयाम —प० केशवप्रसाद पाठक)

4 'उमर खैयाम की रुबाइयाँ, प्रकाशक—किताबिस्तान, इलाहाबाद, 1947 ई०

5 मधुज्वाल' प्रकाशक भारती भडार लीडर प्रेस, प्रयाग 1948

6 'रुबाइयात उमर खैयाम, प्रकाश—साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी) 1959

7 रुबाइयात उमर खैयाम पृष्ठ 1 (सम्पादक—मौलवी महेशप्रसाद हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस सितम्बर 1933)

ऐसा न हो कि (देवता लोग) हमारे जीवन का प्याला भर दें अर्थात् यमराज का बुलावा आ जाए।

> Dreaming when Dawn's left hand was in the sky
> I heard a voice within the tavern cry,
> "Awake, my little ones, and fill the cup
> Before Life's Liquor in its cup be dry"
>
> Fitsgerald —' Rubaiyat of Omar Khayyam ' Sl 2

उषा ने ले अँगडाई, हाथ
दिये जब नभ की ओर पसार,
स्वप्न में मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार—
"उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख,
नही तो तन-प्याली की शीघ्र
जायेगी जीवन-मदिरा सूख।"

बच्चन—'खैयाम की मधुशाला', सख्या 2

अँगडाता था अरुण खडा, जब बढा वाम कर अम्बर में
मुझे सुन पडा स्वप्न राज्य मे तब यह स्वर मदिराघर मे
'व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन प्याली मे हाला
जाग जाग, अय मेरे शिशु दल, ढाल ढाल मधु पी प्याला'।

प० केशव प्रसाद पाठक—रुबाइयात उमर खैयाम, स० 2

वाम-कनक-कर ने उषा के
जब पहला प्रकाश डाला,
सुना स्वप्न में मैंने सहसा
गूँज उठी यो मधुशाला—
'उठो, उठो, ओ मेरे बच्चो,
पात्र भरो, न विलम्ब करो,
सूख न जावे जीवन-हाला,
रह जावे रीता प्याला।'

मैथिलीशरण गुप्त—'रुबाइयात उमर खैयाम', स० 2 पृष्ठ 31

पौ फटते ही मधुशाला में, गूँजा शब्द निराला एक,
मधुबाला से हँस-हँसकर यो कहता था मतवाला एक—

"स्वांग बहुत है रात रही पर थोडी, ढालो ढालो शीघ्र
जीवन ढल जाने के पहले ढालो मधु का प्याला एक ।"
रघुवंश लाल गुप्त—'उमर खैयाम की रुबाइयाँ', स० 2

खोलकर मदिरालय का द्वार
प्रात ही कोई उठा पुकार
मुग्ध श्रवणों में मधु रव घोल,
जाग उन्मद मदिरा के छात्र!
ढुलक कर यौवन मधु अनमोल
रीत रह जायें नही मृदु मात्र,
ढाल जीवन मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र ।

सुमित्रानंदन पंत —'मधुज्वाल , सहया

सबसे पहले हम फिट्ज़ेरल्ड कृत अनुवाद की चर्चा करेंगे। मूल से तुलना करने पर ज्ञात होगा कि फिट्ज़ेरल्ड ने खैयाम की तरह ही रुबाई छन्द अपनाया है, अर्थात् अनुवादित रुबाई की पहली, दूसरी और चौथी पंक्ति तुकान्त एवं तीसरी अतुकान्त है। मूल की पहली पंक्ति 'आमद सहरे निदा जे मयखानाए मा' का फ़िट्ज़ेरल्ड ने जो अनुवाद किया है—

Dreaming when Dawn's left hand was in the sky

इसमें अनुवादक की कल्पना एवं सूझबूझ स्पष्ट दिखायी पडती है। 'आमद सहरे' का अर्थ है 'सुबह होना' या 'सुबह का आना'। इन दो शब्दों को फिट्ज़ेरल्ड ने नौ शब्दों में कहा है। पर जिस ढंग से कहा गया है उसके पीछे अनुवादक का कवित्व झलकता है। पहली पंक्ति में 'Dreaming' शब्द बहुत सार्थक है क्योंकि सुबह-सवेरे हम स्वप्निल अवस्था में होते हैं, 'Dawn's Left hand' से ज्ञात होता है कि फिट्ज़ेरल्ड को फारसी साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। सूर्योदय के समय जो पहली किरणें निकलती हैं उसे फ़ारसी में 'उषा का बायाँ हाथ' कहते हैं। इस प्रकार बेज़ान 'आमद सहरे' में अनुवादक ने चाक्षुष बिम्ब की सर्जना की है और यह प्रशंसनीय है। साथ ही फिट्ज़ेरल्ड ने मूल की पहली पंक्ति के दूसरे अर्धांश 'निदा जे मयखानाए मा' को अनुवाद की दूसरी पंक्ति में दिया है—

'I heard a voice within the Tavern cry'

इस अनुवाद में द्रष्टव्य है कि फारसी में 'मा' का अर्थ 'हम' है पर फिट्ज़ेरल्ड ने उसे 'I' कर दिया है। तीसरी पंक्ति में 'बरख़ेज़' में जो शक्ति है वही 'Awake!' में है। मूल के 'ए रिन्द खराबाती' अर्थात् 'हे मधुशाला के शराबी' को फ़िट्ज़ेरल्ड ने 'My little ones' कर दिया है। 'पुरकुनेम पैमानाए ज़े मय' अर्थात् 'चषक में

मदिरा ढाल' का सटीक अनुवाद किया गया है—'fill the cup'। 'कि' का पर्यायवाची 'and' ठीक दिया गया है। चौथी पंक्ति में 'जा पेश' का शब्दानुवाद 'Before' किया गया है। 'Life's liquor in its cup be dry' में रूपक अलंकार की छटा सुन्दर प्रतीत होती है। अनुवादक ने जीवन को मदिरा का रूप दिया है और तन को प्याले का।

समग्रत. यह अनुवाद अच्छा बन पड़ा है और इसमें एक खास 'अदाज़े बयाँ' है। वे स्वयं लिखते हैं—

> "My translation will interest you from its forms, and also in many respects in its detail . ..."

यह तो था फिट्ज़ेरल्ड-कृत अनुवाद का मूल्यांकन और इसका अलग से विवेचन करना इसलिए आवश्यक था क्योंकि परवर्ती अनुवादकों ने हिन्दी में जो अनुवाद किया है वह फिट्ज़ेरल्ड-कृत अनुवाद का ही आधार लेकर किया गया है। अब हम बच्चन, प० केशवप्रसाद पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रघुवंशलाल गुप्त, तथा सुमित्रानन्दन पन्त-कृत अनुवादों का शब्द-चयन, वाक्य, छन्द, अलंकार, शैली आदि की दृष्टि से मूल्यांकन करेंगे।

छन्द और काव्य का आदिकाल से ही सम्बन्ध है। छन्द मानवोच्चरित वह ध्वनि समूह है जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंग-भंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और *अर्थ की अभिव्यंजना कर सके।*

फिट्ज़ेरल्ड ने मूल की तरह रुबाई छन्द अपनाया है। हिन्दी अनुवादकों में से मैथिलीशरण गुप्त एवं रघुवंशलाल गुप्त[1] ने रुबाई छन्द अपनाया है। प० केशवप्रसाद पाठक ने चतुष्पदी तो ग्रहण की है परन्तु पहली-दूसरी और तीसरी-चौथी पंक्ति तुकान्त कर दी है। डॉ० बच्चन भी रुबाई छन्द का पूर्ण रूप से निर्वाह नहीं कर पाये। वे लिखते हैं—'रुबाई का आदर्श तो यही है कि चार पंक्तियों में किसी भाव को पूर्ण कर दे। पर अनुवाद करते समय यह आदर्श न निभ सके तो मैं इसे कोई अपराध अथवा त्रुटि नहीं समझता।'[2]

काव्यानुवाद में शब्द चयन का विशिष्ट महत्त्व है। शब्दों का सम्यक् चयन और उपयोग प्रत्येक श्रेष्ठ कवि की अपनी विशेषता होती है। एक ही भाव के निष्पादन के लिए कोमल-कान्त और कर्कश दो प्रकार के पर्याय हो सकते हैं। कवि रसपरिपाक के अनुकूल शब्द चुन लेता है।

फिट्ज़ेरल्ड की पहली पंक्ति—

---

1 अलीगढ़ में जन्म म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद में शिक्षा। आई० सी० एम० के के लिए चुने गए। भारत सरकार के वाणिज्य सचिव रहे। साहित्य में प्रारम्भ से ही रुचि रही। आपका 'उमर खैयाम' का अनुवाद अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है।

2 'खैयाम की मधुशाला', डॉ० बच्चन पृष्ठ 138

'Dreaming when Dawn's left hand was in the sky'

के अनुवाद मे डॉ० बच्चन ने सुन्दर शब्द-चयन किया है। 'dawn' के लिए 'उषा ने ले अँगडाई' का प्रयोग सुन्दर बन पडा है। डॉ० बच्चन ने चाक्षुप बिम्ब प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। ठीक ही कहा गया है कि अनुवादक के लिए कवि होना अनिवार्य है। उधर प० केशवप्रसाद पाठक[1] के अनुवाद 'अँगड़ाता था अरुण खडा' मे वह सुन्दरता नही आ पायी है। 'अरुण' की अँगडाई की अपेक्षा 'उषा' की अँगडाई प्रयोग अधिक सुन्दर है। रघुवशलाल गुप्त तो 'पौ फटते' ही से सन्तुष्ट हो गये हैं। सीधे-सादे व्यक्तित्व वाले मैथिलीशरण गुप्त जी ने यहाँ भी अपनी तथ्यात्मकता को नहीं छोडा है और सीधे ही 'प्रकाश डाला' अनुवाद किया है। 'मधुज्वाल' के प्रेमी पत ने तो 'प्रात ही मदिरालय का द्वार खोल दिया।

पहली पक्ति के उत्तरार्द्ध—'Left hand was in the sky' का बच्चन ने सटीक अनुवाद 'दिये जब नभ की ओर पसार' किया है। यहाँ 'पसार' शब्द ध्यातव्य है। जब भी कोई अँगडाई लेता है तो उसके हाथ अपने-आप फैल जाते हैं। बच्चन की अभिव्यक्ति की कुशलता प० केशवप्रसाद पाठक के 'बढा वाम कर अबर मे' मे नहीं आ पाई है, हालाँकि बच्चन ने 'left hand' का अनुवाद नही किया। जैसा कि पीछे कहा गया है, सूर्योदय के समय जो सूर्य की पहली किरणें निकलती हैं उसे फारसी साहित्य मे 'ऊषा का बायाँ हाथ' कहा जाता है। डॉ० बच्चन लिखते हैं, "मेरे बदले हुए रूपक मे दाएँ-बाएँ का भेद अनावश्यक है और रुबाई के मूल भाव मे इससे कोई अन्तर नही आता।"[2]

मैथिलीशरण गुप्त ने इसका अनुवाद 'वाम कनक-कर' किया है जो मात्र शब्दानुवाद तो है ही, साथ ही बेजान भी है। रघुवशलाल गुप्त तथा पत ने तो इसका अनुवाद किया ही नही। एक ने 'पौ फटते' देखी है तो दूसरे ने 'प्रात'।

फिट्जेरल्ड की दूसरी पक्ति—

'I heard a voice within the Tavern cry'

का बच्चन का अनुवाद तो बिलकुल सटीक है—

'स्वप्न मे मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार'

किन्तु इसमें वह चमत्कार नही है जो पाठक के अनुवाद मे है—

1 जन्म 1906 ई० में जबलपुर में हुआ। एम० ए० (हिन्दी) तक शिक्षा प्राप्त की। इनके द्वारा प्रस्तुत 'उमर खैयाम की रुबाइयात' का अनुवाद अत्यन्त सफल माना जाता है।

2 'खैयाम की मधुशाला', पृष्ठ 133

'मुझे सुन पड़ा स्वप्न-राज्य मे
तब यह स्वर मदिराधर में'

इसका शब्द-चयन सुन्दर है। ध्यान देने योग्य है कि जब मनुष्य नींद में होता है तो वह एक अनोखे 'स्वप्न-राज्य' में विचरता रहता है और ऐसी अवस्था मे आवाज़ 'सुनायी' नहीं 'सुन पड़ती' है। उधर मैथिलीशरण गुप्त के अनुवाद 'सुना स्वप्न मे सहसा गूँज उठी यो मधुशाला' सादा ही है और यही 'गूँज रघुवंशलाल गुप्त को भी सुनायी पड़ी है। 'एक' शब्द का प्रयोग रघुवंशजी न मात्र तुकबन्दी के लिए किया है। कल्पनाजीवी पंत को 'मैं' का ध्यान ही नहीं रहा—'प्रात ही कोई उठा पुकार'।

इस प्रकार हमें 'cry' के तीन अनुवाद मिलते हैं—'गूँज', 'स्वर' और 'पुकार'। 'स्वर' मे जो मृदुलता है वह 'पुकार' या 'गूँज' में नहीं है।

फिट्ज़ेरल्ड की तीसरी पंक्ति—

"Awake, my little ones, and fill the cup'

के अनुवाद में सभी अनुवादकों ने अपनी कल्पना एवं बुद्धि से काम लिया है। बच्चन का अनुवाद है—

'उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख'

'Awake' का पाठकजी ने 'जाग-जाग' अनुवाद किया है और यह बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। अनुवादक की मनोवैज्ञानिकता यहाँ दृष्टिगत होती है। स्वप्न-राज्य मे मस्त आदमी को तो झिंझोड़कर ही जगाया जाता है अतः यहाँ जाग-जाग' शब्द सार्थक बन पड़ा है। मैथिलीशरण गुप्त के उठो-उठो' मे वह तीव्रता नहीं आ पायी है। रघुवंशलाल ने अगर 'मधुबाला' के हँस-हँस' कर कह॰ की कल्पना की है तो पंत को ऐसे लगा मानो कोई उसके 'मुग्ध श्रवणों मे मधु घोल रहा हो।

'Little ones' के कई अनुवाद देखने मे आते हैं। बच्चन ने 'मेरे शिशुओ नादान' कहा है तो पाठक ने 'अय मेरे शिशु दल'। गुप्तजी का सौहार्द देखिए। उन्होंने 'ओ मेरे बच्चो' अनुवाद किया है। रघुवंशलाल इस फेर में न पड़कर सीधे मधुबाला' से बात करते दिखायी देते हैं और अन्त मे रह गये पंत। उन्होंने शिक्षक का मोह नहीं छोड़ा और 'मदिरा के छात्र' ही अनुवाद कर दिया है।

'Fill the cup' के अनुवाद मे सभी मदिरा-पान करने वालों की व्यग्रता बढ़ती दिखायी देती है। बच्चन ढालने तक ही नहीं रुके, पीने के लिए आग्रह करने लगे—'बुझा लो पी-पी मदिरा भूख', और उनकी मदिरा की प्यास भी कोई छोटी-मोटी नहीं वह तो मदिरा की 'भूख' है। उधर पाठकजी का अनुवाद 'ढाल-ढाल मधु पी प्याला' भी सुन्दर बन पड़ा है। ढाल-ढाल मे व्यग्रता तो है ही,

ध्यात्मकता भी है। इधर गुप्तजी आहिस्ता से 'पात्र भरो, न विलम्ब करो' कहते हैं क्योंकि सम्भवत वैष्णव होने के नाते पीने से डरते हैं। उधर रघुवशजी को समय का अभाव खटक रहा है—

'स्वाँग बहुत है रात रही पर थोडी, ढालो ढालो शीघ्र'

'ढालो ढालो शीघ्र' में व्यग्रता सीमा पर पहुँच गयी है। उधर पतजी का 'मधुज्वाल' इन पक्तियो मे साफ दिखायी पड रहा है

'ढाल जीवन मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र !

'fill' के लिए 'लबालब भर' बहुत उपयुक्त एव सार्थक है।

अब हम फिटजेरल्ड की चौथी पक्ति पर आते हैं—

'Before life's Liquor in its cup be dry'

बच्चन ने इसका अनुवाद किया है—

'नही तो तन-प्याली की शीघ्र
जायेगी जीवन - मदिरा सूख।'

लगभग ऐसा ही अनुवाद पाठक जी ने किया है—

'व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन प्याली मे हाला'

गुप्त का अनुवाद बिलकुल सादा है और तुकबन्दी साफ़ झलकती है—

'सूख न जावे जीवन-हाला,
रह जावे रीता प्याला।'

रघुवश का अनुवाद भी विशेष अच्छा नही बन पड़ा है —

'जीवन ढल जाने के पहले ढालो मधु का प्याला एक'

फिर भी 'ढल' का दो अर्थों मे प्रयोग कर अनुवादक ने अपनी सूझबूझ एव कवि-हृदय का परिचय दिया है। फिटजेरल्ड ने जो रूपक बांधा था उसका पालन इन्होने नहीं किया। सौन्दर्यजीवी पत ने यौवन की कल्पना कर मदिरा पान के महत्त्व को जिस प्रकार शब्दो मे बांधा है, वह बजोड है—

'ढुलक कर यौवन मधु अनमोल
शेष रह जाए नही मृद मात्र,'

'Life's Liquor' के लिए 'यौवन मधु' सुन्दर बन पडा है। अन्य अनुवादक जहाँ 'जीवन' कहकर चुप हो गये हैं वहाँ छायावादी पत जीवन की उस विशेष वय का स्मरण दिलाते हैं जिसमे पीने-पिलाने की उद्दाम लालसा है।

काव्य मे अलकारो का होना आवश्यक माना गया है। आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मो को अलकार माना है—

'काव्यशोभाकरान्धर्मान् अलकारान्प्रचक्षते।'

(काव्यादर्श 2-1)

अग्निपुराणकार ने तो यहाँ तक कह दिया है—

'अलकाररहिता विधवेव सरस्वती'।

अर्थात् सरस्वती भी अलकार-विहीन होने पर विधवा के समान होती है।

कवि को अलकारो का प्रयोग सहज रूप से करना चाहिए ताकि काव्य बोझिल न हो जाय। अनुवादक के लिए तो अलकारो का प्रयोग बहुत ही कठि होता है। प्रस्तुत सदर्भ म अलकारो का यथास्थान प्रयोग किया गया है। 'ऊषा ने ले अँगडाई', 'अँगडाता था अरुण खडा' मे मानवीकरण अलकार है। प० केशवप्रसाद पाठक ने रुबाई की अन्तिम पक्ति मे वीप्सा अलकार का सुन्दर प्रयोग किया है—

'जाग-जाग, अय मेरे शिशु-दल, ढाल ढाल मधु पी प्याला'

यहाँ 'जाग-जाग' एव 'ढाल-ढाल' मे वीप्सा अलकार है। रघुवशलाल गुप्त ने भी इसी अलकार का सुन्दर प्रयोग किया है—'ढालो-ढालो शीघ्र'। 'जीवन मदिरा', 'जीवन-प्याली', 'तन प्याली' मे रूपक अलकार है। 'बुझा लो पी पी मदिरा भूख' मे 'पी-पी' मे वीप्सा अलकार है और साथ ही विरोधाभास भी है।

'मधुवाला से हँस-हँस कर यो कहता था मतवाला एक'

मे पुनरुक्ति है।

प्रत्येक काव्यानुवाद सुविधा के अनुसार पक्तियो को आगे-पीछे कर देता है। 'बच्चन ने अगर फिट्ज़ेरल्ड की तीसरी पक्ति का उसी क्रम मे अनुवाद किया है तो पाठक ने वह बदल दिया है।

'Awake, my little ones, and fill the cup
Before life's liquor in its cup be dry'

"उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख,
'नही तो तन-प्याली की शीघ्र
जायेगी जीवन मदिरा सूख"

—बच्चन

व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन प्याली मे हाला,
जाग जाग, अय मेरे शिशु दल, ढाल-ढाल मधु पी प्याला।

—पाठक

इसी प्रकार फिट्ज़ेरल्ड की प्रथम पक्ति का प्रथम शब्द Dreaming बच्चन की रुबाई की तीसरी पक्ति का प्रथम शब्द बन गया है और पाठक की रुबाई मे दूसरी पक्ति का चौथा शब्द।

शब्दो का यह समायोजन कविता मे लयात्मकता, सगीतात्मकता आदि बनाये रखने के लिए किया जाता है। पत ने रुबाई छन्द अपनाया ही नही।

उसके अनुवाद मे उनके कवित्व एव व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दिखायी देती है।

उमर खयाम के अनुवाद मे प्रत्येक अनुवादक का अपना व्यक्तित्व निखर कर आया है। बच्चन के अनुवाद में मधु की महक मिलेगी तो प० केशवप्रसाद पाठक के अनुवाद में लयात्मकता का पुट। गुप्तजी ने मूल के साथ अन्याय न कर सादगी से शब्दानुवाद कर दिया है तो रघुवशलाल गुप्त ने कल्पना-पख लगा कर उडान भरी है। सुमित्रानन्दन पत के अनुवाद पर इनके कवित्व व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखायी देती है। जहाँ डॉ० बच्चन ने मधुशाला मे बैठकर अंगूरी हाला पी है वहाँ पतजी मधुचषक लिये प्रकृति-प्रांगण में झूमते फिरते नजर आते हैं।

अन्त मे, कौन-सा अनुवाद अच्छा बन पडा है—यह निर्णय देना तो काव्या-अनुवाद करने से भी कठिन है। सत्य तो यह है कि जिसे मधु रास आ गयी उसी की अभिव्यक्ति सुन्दर है और वे सब अनुवादक तो 'मदिरा-छात्र' ही हैं। हाँ, वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्त पर सदेह किया जा सकता था परन्तु गुप्त ने उसका निवारण पुस्तक 'रुबाइयात उमर खैयाम '(पृ० 6) की भूमिका मे कर दिया है—

"मुझे मित्रो का वह निर्मम विनोद अब मदय आमोद-सा प्रतीत होता है, हठ-पूर्वक ही सही, उन्होने मुझे पिला ही दी और उसके अगूर मेरे लिए भी अब वैसे खट्टे नहीं रह गये।"

परिशिष्ट

भोलानाथ तिवारी

कुछ इस्तोनियन कविताएँ : हिन्दी अनुवाद

इस्तोनियन भाषा फिनो-उग्रिक परिवार की है। इस भाषा का मुख्य केन्द्र सोवियत इस्तोनिया है जिसकी जनसख्या लगभग 14 लाख है। कुछ इस्तोनियन भाषी कनाडा ब्रिटेन तथा आस्ट्रेलिया मे भी रहते हैं। इस भाषा की एक मुख्य ध्वन्यात्मक विशेषता है स्वरो के मात्रा के आधार पर तीन रूप, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। ये तीनो इस भाषा मे ध्वनिग्रामिक या सार्थक हैं कोॅली=नगण्य चीज़ कोऽली=स्कूल का (सम्बन्ध कारक), कोऽऽली=स्कूल को (कर्म कारक), तथा तीनो ही रूपो का काफी प्रयोग होता है। इस भाषा म व्याकरणिक लिंग नही होता। वचन दो है। कारक इस भाषा मे चौदह हैं। इनमे भूत और वर्तमान तो है किन्तु व्याकरणिक रूप की दृष्टि से भविष्य काल नही है। उसे वर्तमान काल से व्यक्त करते हैं (जैसे 'मा लायन सेदा रामातुत=मैं पुस्तक पढ़ता हूँ, इसी का कुछ सदर्भों मे भविष्यत् का अर्थ हो जायेगा) या 'आने वाला कल आदि क्रिया-विशेषण लगाकर या कुछ क्रियाविशेषण पदबधो की सहायता से।

मैंने इस्तोनियन भाषी अपनी शिष्या आइता से ताशकद (सोवियत सघ) मे इस्तोनियन भाषा का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त किया था। यहाँ दिये गये अनुवाद भी उन्ही की सहायता स किए गए हैं। इस्तोनियन मे भी कुछ हिन्दी कहानियो तथा कविताओ आदि के अनुवाद हुए हैं। हिन्दी में इस्तोनियन कविताओ के अनुवाद—जहाँ तक मेरी जानकारी है, यहाँ प्रथम बार प्रकाशित किये जा रहे हैं।

इस्तोनियन भाषा साहित्य की दृष्टि से काफी सम्पन्न है। इस्तोनियन साहित्य पर भारतीय प्रभाव भी है, मुख्यत बौद्ध-दर्शन तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर का। ठाकुर की 'गीताजलि' तथा कई अन्य कृतियो का अनुवाद इस्तोनियन में हो चुका है।

इस्तोनियन लिपि रोमन पर आधारित है।

आइन कालेप (1926—)

आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और अनुवादक कालेप पहले एक कृषि-प्रयोगशाला मे काम करते थे, फिर पुरानी चीजो के सग्रह में लग गए और बाद मे स्नातक हुए। अब इनका व्यवसाय लेखन है। इनके दो काव्य-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं : समरवन्दी पुस्तिका, उषा दृश्य।

(1) भावी खून

कहाँ है भविष्य, भावी खून ?
कही भी हो,
उसकी सशक्त आवाज,
सभी ने
कही-न-कही
अवश्य सुनी है।
और उसके चेहरे का उभार,
हममे से
बहुतो ने देखा है,
मार्क किया है,
क्योंकि वह,
जीवित है जीवत है,
और वह उसका खून
हमारी रगो में उमड रहा है,
दौड रहा है।

(2) समय

घाटियो-जैसे बडे और चौडे रास्ते पर,
महाकाल-सा समय,
अपने पद-चिह्न अकित करता
बढा जा रहा है।
'गोया' की तरह भव्य और विराट् यह,
अपने सिर से,
गगनस्थित बादलो को छू रहा है।
और पृथ्वी,
समय के अप्रतिम प्रवाह मे

थरथर कांप रही है।
और हम
अतुल गति से
दौड़े चले जा रहे हैं।
हवा कानों में चिल्ला रही है।
और हम
शैतान-जैसी तेजी से,
बिना आराम-विराम के,
बिना थके,
दौड़ने के लिए अधिकाधिक शक्ति पाते हुए
शैतान जैसे डगों से
समय के दो किनारों के बीच
दौड़े चले जा रहे हैं।
ऐसे कि धरती थरथरा रही है
कदमों के नीचे।

× × ×

किन्तु,
इसके अतिरिक्त
चुपके से
धीमी कोमलता से
वहाँ कोई और आ जाता है,
जो कुछ इस तरह कहता है—
रुकिये ! रुकिये !
आराम कीजिये,
आराम कीजिये
अभी समय है जीने के लिए
अभी समय है मरने के लिए
पर्याप्त समय है हर काम के लिए
जल्दी मत कीजिए।
वह अपने आधे मुंह को बिचका रहा है
और उसके कंधों से मृत्यु-प्रतीक चमक रहा है।

× × ×

किन्तु,
उसे कहने दो

मुंह बिचकाने दो
समय एक क्षण को भी
कभी कहीं रुका नहीं
उसने कभी भी विश्राम किया नहीं
और हम भी
नहीं रुकेंगे
विश्राम नहीं करेंगे।

(3) हृदय की वेदनाएँ

मेरा हृदय वेदना से भर जाता है,
झीलों के लिए,
जिनके नीचे घासें
उग-उगकर उन्हें समाप्त कर रही हैं।
मेरा हृदय वेदना से भर जाता है,
मित्रों के लिए,
क्योंकि सदा मैं यह नहीं समझ सका
कि उन्हें मेरी आवश्यकता है।
मेरा हृदय वेदना से भर जाता है,
जंगलों के लिए
कि कीड़े उनको खा रहे हैं,
उनको समाप्त कर रहे हैं।
मेरा हृदय वेदना से भर जाता है
प्रेम के लिए
क्योंकि मैं हमेशा अपने मह और बचकानी हँसियों को
दबा नहीं सका।
मेरा हृदय वेदना से भर जाता है
हवा के लिए
जिसमें दूषित तत्त्व
अब भी अवशिष्ट हैं
और बहुत धीरे-धीरे जा रहे हैं।
मेरा हृदय वेदना से भर जाता है
विश्व के लिए
क्योंकि सदा लोगों से
हृदय की वेदनाओं के बारे में

वही बातें नही सुनता
जो उनके दिलो मे होती हैं । (1962)

मोहानेस बर्वारूस (1890-1946)

ये एक किसान के बेटे थे। 1910 मे स्नातक हुए। फिर चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त की और सेना मे भर्ती हो गये। बाद मे ये इस्तोनिया के राज्याध्यक्ष बने। इन्हें लेनिन पदक मिला था। अपनी क्रान्तिकारी कविताओ के लिए ये प्रसिद्ध रहे हैं।

कविता का श्रेणी-संघर्ष

कविता को,
उस घोडे की तरह दौडने दो,
जिसे मोहरी नही लगी है, और
जिसके अयाल मुक्त लहरा रहे हैं।
\+ + +
कविता मुक्त हो—बेछद, बेतुक,
चिल्लाते घोडे की तरह बेचैन कविता को,
सिर उठाये सबको जगाने दो—
कामवाले, बेकाम।
ग्रामोफोन के पुराने रिकार्डों को,
एक ही घिसी-पिटी सुई से
बजाना बन्द करो।
\+ + +
पृथ्वी का हृदय एकसुरेपन से जल रहा है
कविता को शक्ति लेने दो
अपने चारो ओर की ज्वालाओ से, दुर्भाग्यो से।
अपने हृदय को रेडियो स्टेशन बनने दो—शक्ति
\+ +
तुम्हारा काम ही अस्त्र है,
उससे लोगो की रक्षा करो,
नये सत्य, नये संघर्ष के लिए
इस नयी कविता को
भूत की अशिवताओ को समाप्त करने दो
और कल को बनाने दो।

यान क्रोस (1920—)

ये 1937 से लिख रहे हैं। 1945 में वकालत पास की। ये कवि और अनुवादक दोनों हैं।

किस भाषा में ?

विश्व के सभी भागों मे,
धुएँ से धुआँए
और आँच से झुलसे
पसीने-भरे चेहरों से
सडक बनाने वाले देख रहे हैं।
किस भाषा मे वे देख रहे हैं ?
+ + +
गाँवों और शहरों के सभी वृक्षों के नीचे
अनगिनत लोग एक दूसरे को निहार रहे हैं,
जिनमे प्रेमी का मौन भरा है,
प्रेमी किस भाषा मे चूम रहे हैं,
पूरे विश्व के अधरों को ?
+ + +
बच्चे किस भाषा मे मुस्कुरा रहे हैं ?
+ + +
यहाँ सडक है
प्यार है
और भविष्य है। (1960)

उनो लाहूत (1924—)

ये मजदूर परिवार के हैं। प्रारंभ मे समाचार-पत्रों के संपादकीय विभाग मे थे, 1945 से लेखक-संघ मे काम कर रहे हैं। 1945 मे प्रकाशित 'दूध का दाँत' (व्यंग्यात्मक संग्रह) तथा 1958 मे प्रकाशित 'सिपाही के ओवरकोट की जेब से बैंग में' इनके दो प्रसिद्ध संग्रह हैं।

जन्मदिन

यहाँ नया कलेंडर है,
छोटे-छोटे हाथ इसे थपथपा रहे हैं,

ग्रौर मेरा बेटा मुझसे कह रहा है—
'मेरा जन्मदिन इसमे कहाँ है,
मुझे दिखला दीजिए ।'

\+ \+ \+

मेरा बेटा बहुत शैतान है,
वह है तो तीन साल का,
मगर खूब जानता है कि क्या चाहता है
कलैंडर पर
वह अनधुले अपने हाथो मे निशान लगाता है
थूक से,
चाहता है कि ग्रौर ग्रौर जन्मदिन ग्राएँ
माँ का जन्मदिन
भाई ग्रौर बहिन का जन्मदिन
ग्रौर ग्रत मे सब जन्मदिन बटोरकर
कुछ सोचता है,
ग्रौर फिर पूछता है
'पिता जी,
क्या युद्ध का भी जन्मदिन होता है ?'
'नही बेटे,
मुझे ग्राशा है कि लडाई का जन्मदिन
सदा-सर्वदा के लिए समाप्त हो जाएगा
तुम्हारे जन्मदिन बार-बार ग्राएँगे
तुम खुशियों के ढेर सारे दिन देखोगे,
परन्तु युद्ध का जन्मदिन ग्रब नही ग्राएगा
मानव का वह दुर्दिन
नही ग्राएगा, नही ग्राएगा ।'

डॉ० किरण बाला

साहित्य का अनुवाद : कुछ मत-अभिमत

'अनुवाद' मोटे रूप से चार प्रकार का होता है अखबारी अनुवाद, कार्यालयी अनुवाद, तकनीकी अनुवाद, और साहित्यिक अनुवाद। इनमे प्रथम तीन अनुवाद, अतिम से इस बात मे भिन्न होते हैं, कि उन तीनो की मूल सामग्री 'तथ्य-प्रधान' होती है, जबकि साहित्यिक अनुवाद की मूल सामग्री मे तथ्य के साथ-साथ, अर्थ के स्तर पर 'भाव' तथा अभिव्यक्ति के स्तर पर 'शैली' के दो तत्त्व अतिरिक्त होते हैं। तथ्य-प्रधान सामग्री का अनुवाद करना अपेक्षाकृत सरल होता है, भाव युक्त सामग्री का अनुवाद करना उससे कठिन होता है, किन्तु सबसे कठिन होता है शैली-प्रधान सामग्री का अनुवाद करना क्योकि हर भाषा के शैलीय साधन समान नही होते।

वस्तुत *अखबारी, कार्यालयी, और तकनीकी सामग्री* के अनुवादक की भाँति, साहित्य का अनुवादक कोरा अनुवादक न होकर, सर्जक भी होता है। उसे एक तरफ मूल की अभिधा का अनुवाद करना होता है, तो दूसरी ओर मूल के ध्वन्यर्थ तथा उसकी शैली को अक्षुण्ण रखने का प्रयास करना होता है। यह काम यदि गहराई से देखा जाये तो मूल लेखक के काम से भी कठिन होता है। मूल लेखक तो अपने भावो की मुक्त अभिव्यक्ति करता है, किन्तु साहित्य के अनुवादक को मुक्त होने की छूट नही रहती। उसका दायित्व दुहरा या बल्कि तेहरा होता है। एक ओर तो उससे हम आशा करते हैं कि मूल के कथ्य (विचार और भाव) को वह ज्यो का-त्यो, बिना कुछ जोडे-घटाये, अनुवाद मे उतार दे, दूसरी ओर हम यह चाहते हैं कि मूल की शैली भी अनुवाद की शैली से मेल खाये, और तीसरी ओर हम यह भी चाहते हैं कि अनुवाद अनुवाद न लगकर मूल लगे, या कम-से-कम मूल का भ्रम उत्पन्न करे। इस प्रकार साहित्य का अनुवाद बहुत बडी साधना है।

यहाँ साहित्य के अनुवाद के विषय मे कुछ ऐसे लोगो के मत दिये जा रहे हैं,

जो स्वय अच्छे अनुवादक रहे हैं। वे अनुवाद के विषय मे जो कुछ कह रहे हैं, वह उनका भोगा हुआ यथार्थ है।

(1)

मैं यह मानता हूँ कि किसी कृति को जीवन्त बनाने के लिए अनुवादक को (भले ही वह मूल लेखक से निम्न कोटि का हो) चाहिए कि वह मूलकृति को आत्मसात् करके उसे यथासाध्य अपने ढग से अनूदित करे। यो तो अनुवाद मे मूल से अधिक स्वतन्त्रता लेना अच्छा नही होता, फिर भी जीवित कुत्ता मरे शेर से कही अच्छा होता है।

× × ×

मैं निश्चित रूप से शब्दानुवाद के पक्ष मे नही हूँ। अनुवादक को कुछ भी करना पडे, रचना जीवन्त होनी चाहिए। यदि कोई मूल के सौंदर्य को यथावत् न उतार सके तो उसे अपने दुखद जीवन का ही सक्रामण कर देना चाहिए। भूसा भरे गीध की अपेक्षा जीवित गौरैया भली।—फिट्जेरल्ड

(कॉवेल को उनके द्वारा लिखित दो पत्रो स अनूदित)

(2)

मेरा यह सुदृढ अभिमत है कि उत्कृष्ट स्तर वाले साहित्यिक पुराग्रथो का अनुवाद मूल की कला और सौन्दर्य को उपयुक्त रूप मे अक्षुण्ण रखते हुए एक भाषा से दूसरी भाषा मे कर सकना असभव है। इसका अपवाद वे भाषाएँ हो सकती हैं, जो परस्पर अत्यन्त निकट रूप से सबद्ध हो और दोनो ही भाषाओ को बोलने वालो का एक ही सभ्यता के अन्तर्गत लालन-पालन हुआ हो। उच्च कोटि के साहित्य का अनुवाद हाथ मे लेने मे ऐसी ही किंकर्त्तव्यविमूढता की स्थिति पैदा होती है। मूल के प्रति अत्यधिक सत्यनिष्ठा रखना भी उसके प्रति अ-निष्ठा का साधक हो सकता है। होमर का अनुवाद करते समय विलियम कूपर ने अपने एक पत्र मे लिखा था हर भाषा मे कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं, जिनको दूसरी भाषा मे रूपातरित करना उसके पाठ को ही नष्ट कर सकता है। ऐसी अत्यधिक मूल-निष्ठता वस्तुत अ निष्ठा ही सिद्ध हो सकती है। दूसरी ओर मूल के प्रति पूर्ण निष्ठा रखे बिना कोई भी अनुवाद सार्थक नही हो सकता। सामान्यत वह मूल के गुणों को आत्मसात् न करनेवाला एक दूसरे दरजे की मूल कृति बन जायेगा। एकाध दुर्लभ मामलो मे जैसे फिट्जेरल्ड के उमर खैयाम मे वह मूल साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति बन सकता है, किन्तु इससे हमारी मूल धारणा नही बदलती। फिट्जेरल्ड एक मूल कवि है अनुवादक नहीं।

तो स्थिति यह है कि यदि आप मूल के प्रति निष्ठा रखते हैं, तो आप वस्तुत. उसके प्रति अनिष्ठ सिद्ध होंगे और यदि आप मूल का उन्मुक्त अनुवाद करते हैं, तो आप एक सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे। इस द्वैधीभाव के

कुछ अपवाद हैं पर वे मूल कृतियाँ हैं, अनुवाद नही। वे दूसरी भाषा की कृति पर आधारित मूल कृतियाँ हैं, पर सौन्दर्य और कला के लिए वे आत्म-निर्भर हैं।

इसलिए कला की एक विधा के रूप में अनुवाद कभी सफल नही हो सकते। किन्तु उसका तात्पर्य यह नही कि अनुवाद महत्त्वपूर्ण और उपयोगी काम नही करते। वे 'व्यापक अभिव्यक्ति' के साधन के रूप मे एक बडा ही महत्त्वपूर्ण काम करते हैं। विश्व की अनेक भाषाओं की महत्त्वपूर्ण कृतियो का सार प्रत्येक भाषा के क्षेत्र से बाहर उपलब्ध कर दिया जाना चाहिए और यह मूलनिष्ठ और साथ ही समझदारीपूर्वक किये गये अनुवाद द्वारा ही किया जा सकता है। लय और शब्द के अन्य अलंकार, जो कविता आदि मे सौन्दर्य के अपरिहार्य अंग होते हैं, अनुवाद मे कभी भी उद्धृत नहीं किये जा सकते और इसका निष्कर्ष यह होता है कि बडी सुन्दर कृतियाँ भी अनुवाद मे नीरस और रूपहीन लगने लगती हैं। चावल और उसके चूर्ण की माडी एक ही चीज नहीं है। संतरा, अनार या आम का रस या गुलाब या चमेली का इत्र संतरा, अनार, आम, गुलाब या चमेली ही नही है। आप फल या फूल का रस या इत्र रख सकते हैं किन्तु सम्बन्धित फल-फूल के सौन्दर्य को उद्धृत नही किया जा सकता। यही स्थिति अनूदित वस्तु की है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

('संस्कृति' के जून-जुलाई, 1961 अंक से)

(3)

अनुवाद अन्ततः अपूर्णता की अनुभूति ही देता है। ..भाषा विचारों और मनोभावों का परिधान है, और इस दृष्टि से एक विचारक या कवि की उपलब्धियाँ जिस भाषा मे व्यक्त हुई हैं, उससे उन्हें दूसरी वेश-भूषा मे लाना, असम्भव नही तो दुष्कर अवश्य रहता है।...अपरिचित परिधान कभी-कभी उनके व्यक्तित्व की विशेषता को आच्छादित कर उसे अपरिचित या कौतुक मात्र बना देता है। इसके अतिरिक्त युग-विशेष के कृती स्रष्टा की अनुभूतियो की पुनरावृत्ति सहज नही होती। कवि जब अपनी अनुभूतियों की भी यथातथ आवृत्तियाँ करने मे असमर्थ रहता है, तब युगान्तर के किसी कवि की अनुभूतियो की आवृत्ति के सम्बन्ध मे कुछ कहना व्यर्थ है। परन्तु अनुवादक के लिए ऐसी तादात्म्यमूलक आवृत्ति आवश्यक ही रहेगी, जिसमें वह देशकाल के व्यवधान को पार करके किसी कवि की अनुभूति को नवीन वाणी दे सके।

—महादेवी वर्मा

(संस्कृत और पालि से अनूदित कविताओं के संग्रह 'सप्तपर्णा' की भूमिका 'अपनी बात' से)

(4)

एजरा पाउड की कविताएँ मुख्यत चीनी कविताओ के अनुवाद हैं—शब्दनुवाद नही, अपितु काव्यानुवाद—जिनमे उन्होने चीनी कविताओ की आत्मा को उतारने का यत्न किया है। Ezra Pound, Selected Poems (London 1948) की भूमिका मे टी० एस० इलियट ने काव्यानुवाद के बारे म कुछ अभूतपूर्व बातें कही हैं। यहाँ पेश हैं उनके कुछ उद्धरण

In each of the elements or strands there is something of Pound and something of some other, not further analysable, the strands go to make one rope but the rope is not yet complete And good translation like this is not merely translation, for the translator is giving the original through himself, and finding himself through the original

Pound is the inventor of Chinese poetry for our time I suspect that every age has had and will have, the same illusion concerning translation, an illusion wh ch is not altogether an illusion either When a foreign poet is successfully done into the idiom of our own language and our own time we believe that he has been translated, we believe that through this translation we really at last get the original The Elizabethans must have thought that they got Homer through Chapman, Plutarch through North Not being Elixabethans, we have not that illusion, we see that Chapman is more Chapman than Homer, and North more North than Plutarch, both localized three hundred years ago We perceive also that modern scholarly translations, Loeb or other, do not give us what the Tudors gave If a modern Chapman, or North or Florio appeared, we should believe that he was real translator, we should, in other words, do him the compliment of believing that his translation was translucence For contemporaries, no doubt the Tudor translations were translucence, for us they are 'magnificent specimens' of Tudor prose The same fate impends upon Pound His translations seem to be and that is the test of excellence . translucencies we think we are closer to the Chinese than when we read, for instances, Legge I doubt this I predict

that in three hundred years, Pound's Cathay will be a 'Windsor Translation' as Chapman and North are now 'Tudor Translations', it will be called (and justly) a 'magnificent specimen of XXth Century poetry' rather than a 'translation' Each generation must translate for itself

This is as much as to say that Chinese poetry, as we know it to day, is something invented by Ezra Pound It is not to say that there is a Chinese poetry in-itself, waiting for some ideal translator who shall be only translator, but that Pound has enriched modern English poetry as Fitzgerald enriched it But whereas Fitzgerald produced only the one great poem, Pound's translation is interesting also because it is a phase in the development of Pound's poetry People of to-day, who like Chinese poetry are really no more liking Chinese poetry than the people who like Willow pottery and Chinesishe-Turms in Munich and Kew like Chinese Art It is probable that the Chinese, as well as the Provencals and the Italians and the Saxons, influenced Pound, for no one can work intelligently with a foreign matter without being affected by it, on the other hand, it is certain that Pound has influenced the Chinese and the Provencals and the Italians and the Saxons—not the matter as such, which is unknowable, but the matter as we know it

To consider Pound s original work and his translation separately would be a mistake, a mistake which implies a greater mistake about the nature of translation (Cf his 'Notes on Elizabethan Classicists' in Pavannes and Divisions, p 186 ff) If Pound had not been a translator, his reputation as an 'original' poet would be higher, if he had not been an original poet, his reputation as a 'translator' would be higher, and this is all irrelevant

—टी० एस० इलियट

(5)

अनुवाद करना बहुत कठिन कार्य है। गद्य का अनुवाद किसी तरह कर भी लिया जाये तो पद्य का अनुवाद प्राय असम्भव-सा प्रतीत होता है। कविता

मे शब्दार्थ के ऊपर बहुत-सी बातें होती हैं। अनुवाद मे प्रायः शब्दार्थ ही लाया जा सकता है। फिर भी आज इसकी आवश्यकता है कि एक भाषा के काव्य का परिचय दूसरी भाषा के लोगों को हो।

अनुवाद को पढते समय मूल के सौन्दर्य की प्रत्याशा करना उचित नही। अनुवाद अनुवाद है। यो तो तुलसीदास का अनुवाद भी अंग्रेजी मे हुआ है और अंग्रेजी के विद्वानों द्वारा; पर जो उनकी अवधी की ध्वनि से परिचित हैं, उनको वह तनिक नही सुहायेगा।

—बच्चन

('शेक्सपियर के सॉनेट' के प्राक्कथन से)

मेरी ऐसी धारणा है कि जब तक (पद्य का अनुवाद) पद्य में न किया जाये उनमे रसे-बसे कवित्व की रक्षा नही की जा सकती। हमे यह न भूलना चाहिए कि शेक्सपियर महान् नाटककार ही नही, महान् कवि भी हैं, और उनकी कविता उनके नाटको में बिखरी पड़ी है। जिस कवित्व का शीशमहल उन्होंने पद्य की विशाल छाती पर खडा किया है, गद्य के शीश पर धरते ही वह गिरकर चकनाचूर हो जाता है।

\+ \+ \+

किसी भी भाषा के महान् काव्य मे शब्द और अर्थ, गिरा और अर्थ, जल और बीचि के समान सबद्ध होते हैं। अनुवादक को अर्थ लेना पडता है, शब्द छोडना पडता है, और उस अर्थ को दूसरी भाषा के शब्दो के साथ जोडना पडता है।

\+ \+ \+

पंक्ति के लिए पक्ति रूप मे काव्य का अनुवाद का आग्रह करने से अर्थ के साथ ज्यादती होती। मैंने यह ध्यान रखा है कि शब्द के साथ ज्यादती हो तो हो, अर्थ के साथ, कम से कम, जान मे, न हो।

\+ \+ \+ \+

('मैक्बेथ' के इस अनुवाद में) मैंने...विशेष लक्ष्य अपने सामने रखे थे—अनुवाद, छायानुवाद न होकर अविकल हो, शेक्सपियर के कवित्व की यथासम्भव रक्षा की जाये,......... और चरम लक्ष्य यह हो कि अनुवाद, अनुवाद न मालूम हो।

—बच्चन

('मैक्बेथ' के अनुवाद के प्रथम सस्करण की भूमिका से)

(6)

मूल कृति मे और उसके अनुवाद के बीच मे दीवारें बहुत बडी रहती हैं। पृथक् सस्कार, पृथक् काव्य-रूढ़ियाँ, पृथक् बिंब-समूह। जोडने वाला तत्त्व बहुत

क्षीण रहता है। और ऐसी स्थिति में सफल अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह शाब्दिक अनुवाद नहीं हो पाता, और शाब्दिक अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह सफल नहीं हो पाता। और काव्य-कला ऐसी कला है जिसमें शब्द बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

इसी स्थिति को लक्षित कर एक अनुवादक ने कहा था कि काव्यानुवाद की प्रकृति बिल्कुल स्त्री-प्रकृति होती है। जितनी सुन्दर होगी, उतनी ही अविश्वसनीय। स्त्री-प्रकृति के बारे में तो इस कथन से पूर्णतया सहमत हूँ, पर अनुवादों के सम्बन्ध में मेरे ख्याल में एक बीच का रास्ता निकालने की गुंजाइश है।

—धर्मवीर भारती

('देशांतर' की भूमिका से)

(7)

श्री राजेन्द्र द्विवेदी ने शेक्सपियर के सॉनेटों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है। उसके आमुख में उन्होंने काव्यानुवाद विषयक कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण बातों की ओर संकेत किया है

'लीवर का विचार है कि इतने अदृष्टपूर्व वैचित्र्य, व्याप्ति और शक्ति वाले ये सॉनेट निस्सन्देह शेक्सपियर की अगाध प्रतिभा के प्रतीक हैं और उनके निर्वचन (अनुवाद) का दुःसाहस करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को सागर में डुबकी लगाने का यह खतरा समझबूझ कर ही उठाना चाहिए।'[1] इसके साथ ही जब एक अनुवाद पद्य में किया जाता है, तो छन्द की मात्रा, यति, लय और तुक के बन्धन इस कार्य को और भी दुष्कर बना देते हैं। मैं बच्चन जी के इस विचार से पूर्णतः सहमत हूँ कि ऐसे अनुवाद में सदैव सुधार और परिवर्तन सम्भव है।
. निर्वचन और छन्द के बन्धन के अतिरिक्त कुछ अन्य विशिष्ट कठिनाइयाँ भी ऐसे अनुवाद में एक अनुवादक को उठानी पड़ती हैं। सॉनेटकार शाब्दिक खिलवाड़ों की ओर भी विशेष ध्यान देता है। मैं नहीं समझता कि शब्दालंकारों का अनुवाद दूसरी भाषा में सम्भव है। ऐसी स्थिति में तो एक मूल अर्थ ही लिया जा सकता है। एक उदाहरण देखें—

प्रोफिटलेस यूज़रर, ह्वाई डस्ट दाउ यूज़ (4-7)
ओ निर्लोभ कुसीदक, करता क्यों उसका उपयोग (अनुवाद)
+ + +
दैट यूज़ इज़ नौट फौरबिडेन यूज़री (6 5)
यह वर्जित कौसीद्य नहीं है है सुन्दर उपयोग (अनुवाद)

इस यमक का निर्वाह अनुवाद में नहीं हो सकता। एक शाब्दिक खिलवाड़

1 द एलिज़ाबेथन लव सानेट—जे० डब्ल्यू० लीवर, पृष्ठ 274

और देखें, परन्तु इसका अनुवाद मे भी सफल निर्वाह हो गया है—

दोज लिप्स दैट लव्स श्रोन हैंड डिड मेक,
ब्रेदड फोर्थ द साउड दैट सैड 'श्राइ हेट',

\+ + +

'श्राई हेट' फ्रॉम हेट श्रवे शी थ्र्यू
एड सेव्ड माइ लाइफ, सेइग 'नौट यू'। (145-1, 2, 13, 14)
'वे मधु अधर रचा था जिन्हें प्यार ने स्वय सँवार,
'करूँ मैं घृणा' किये जा रहे इस ध्वनि का उद्गार

\+ + +

'करूँ मैं घृणा' मैं घृणा कह आगे विराम को छोड
बचा दिया यह मेरा जीवन, आगे 'तुम्हें न' जोड। (अनुवाद)

इसी प्रकार अर्थ-श्लेष का निर्वाह भी कई स्थलो पर सफलतापूर्वक किया गया है—

इफ ए ट्रू काकर्ड श्राफ वेल ट्यूड साउड्स
वाई यूनियन्स मेरीड डू श्रौफेंस दाई इयर

\+ + +

मार्क हाउ वन स्ट्रिंग स्वीट हस्वैड टू एनदर
स्ट्राइक्स ईच इन ईच बाई म्युचुअल आर्डरिंग (8-5,6,9,10)

\+ + +

रागबद्ध ध्वनियो की सच्ची यदि एकता पुनीत,
भेद रही श्रुति कुहर तुम्हारे, मधुर मिलन-परिणीत

\+ + +

देखो कैसे एक तार बनता तन्त्री का कान्त,
सबको करता प्रहत परस्पर दे आदेश नितान्त (अनुवाद)।

परन्तु शब्द श्लेष की दिशा मे यह सफलता नही मिल सकती—

लव्स श्राई इज, नौट सो टू एजुद श्रौलमेंन्स नो (148-8)
जग के 'न' से न सच्चे कही प्रेम-लोचन अनजान (अनुवाद)

इसमें 'श्राई' के दो शब्दार्थों (लोचन, हाँ) का निर्वाह नही हो सका। इसी प्रकार—

बोर्न श्रोन दि बाइर विद व्हाइट एड ब्रिस्टली बियर्ड (12-8)
सित कठोर हो फिर अर्थी पर चढ जायँ खलिहान (अनुवाद)

इसमें भी दोनो शब्दार्थ लाने का प्रयत्न पूर्ण सफल नही हो सका, यद्यपि दोनो अर्थों का संकेत स्पष्ट है। साथ ही विधिशास्त्र के प्राविधिक शब्दो (दे॰ 46,87, 134) अथवा पूर्वोल्लिखित दर्शनशास्त्र के शब्दो का अनुवाद भी एक समस्या

लेकर सामने आता है, परन्तु उन्हे निभाने का पूरा प्रयत्न किया गया है

शब्दालकारो और प्राविधिक शब्दों के अनुवाद की कठिनाइयो से भी
महत्त्व अनुवाद की सास्कृतिक कठिनाइयो का है। पौराणिक कथाओ के प
उल्लेख तो परेशानी मे डालते ही हैं (क्योकि वैसे समानान्तर अपने पु
मिलना सर्वत्र सभव नही), साथ ही ऋतु-चक्र, प्राकृतिक उत्पादन तथा
अनेक बातो के अनुवाद मे विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। 'समर' को
कह देना उचित नही, परन्तु उससे एक इग्लैंडवासी का जो अभिप्रेत है
सिद्धि, भारत मे 'ग्रीष्म' कहने से नही होती। इसी प्रकार चार तत्वों
नौ वाणियों (म्यूजिज) को यथारूप ले लेना, शस्य देवता 'सैटर्न' का
केवल 'शस्य' कर देना, काल के सिये और नाइफ का अनुवाद दड
कर देना, 'रोज' का अनुवाद कभी-कभी 'कमल' कर देना, 'कैंकर' के अनुवा
और 'एप्रिल' का अनुवाद 'मधु-ऋतु या वैशाख', फिलोमेल का अनुवाद
कर देना—प्राकृतिक-चित्र-विधान की दृष्टि से मैंने सर्वथा उपयुक्त स
कुछ पौराणिक नामो का एक विशेष कहानी से सम्बन्ध होने से वि
होता है, जैसे हैलिन, अडोनिस आदि। इनको अनुवाद मे भी यथारूप
गया है। 'फोनिक्स' एक ऐसा पुराण-कल्पित निर्जीवी पक्षी है, जो मृ
जल जाता है और उसके रक्त से पुन वैसे ही एक नये पक्षी की सृष्टि
है। एक भारतीय पाठक के लिए 'फोनिक्स' का अनुवाद 'जटायु' या ग
कर दिया जाये, तो कुछ स्पष्ट नही होता, अत उसे भी न केवल यथ
गया है, बल्कि कुछ विशेषण बढाकर मूल कथा की ओर भी सकेत
गया है—

एड वर्न दि लौंग-लिव्ड फोनिक्स इन हर ब्लड, (19-4)

कर दे दग्ध चिरायु विहग फोनिक्स सजीव अछोर। (अनुवाद)

इसी प्रकार 'डायनज मेड' का अनुवाद 'डायना-कुमारी' रखा गया है।
का अनुवाद 'काम' अवश्य किया गया है, पर उसे 'काम कलभ' क
भारत मे बालो या धम्मिलो की तुलना शिखी-पिच्छ और नाग से
वर्ण की तुलना घटाओ से की जाती है, पर पश्चिमी कवि उनकी
और मार्जोरम-कलियो से करते हैं—इन्हें भी यथावत् रख लिया गया
कालीन पतझर भारत मे नही होता, अत पतझर को हिम-पतझ
गया है और एक स्थल पर 'अति-हिम-आवृत' कहकर उसकी तीव्र

—रा

लेकर सामने आता है, परन्तु उन्हे निभाने का पूरा प्रयत्न किया गया है ।

शब्दालकारो और प्राविधिक शब्दों के अनुवाद की कठिनाइयो से भी अधिक महत्त्व अनुवाद की सास्कृतिक कठिनाइयो का है। पौराणिक कथाओ के पात्रो के उल्लेख तो परेशानी में डालते ही हैं (क्योकि वैसे समानान्तर अपने पुराणो मे मिलना सर्वत्र सभव नही), साथ ही ऋतु-चक्र, प्राकृतिक उत्पादन तथा ऐसी ही अनेक बातो के अनुवाद में विशेष सावधानी अपेक्षित होती है। 'समर' को वसन्त कह देना उचित नही, परन्तु उससे एक इग्लैंडवासी का जो अभिप्रेत है, उसकी सिद्धि, भारत में 'ग्रीष्म' कहने से नही होती। इसी प्रकार चार तत्त्वो को और नौ वाणियो (म्यूज़िज) को यथारूप ले लेना, शस्य देवता 'सैटर्न' का अनुवाद केवल 'शस्य' कर देना, काल के सिथे और नाइफ का अनुवाद दड और पाश कर देना, 'रोज' का अनुवाद कभी-कभी 'कमल' कर देना, 'कंकर' के अनुवाद 'करील' और 'एप्रिल' का अनुवाद 'मधु-ऋतु या वैशाख', फिलोमेल का अनुवाद 'कोकिल' कर देना—प्राकृतिक-चित्र विधान की दृष्टि से मैंने सर्वथा उपयुक्त समझा है। कुछ पौराणिक नामो का एक विशेष कहानी से सम्बन्ध होने से विशेष महत्त्व होता है, जैसे हैलिन, अडोनिस आदि। इनको अनुवाद मे भी यथारूप ले लिया गया है। 'फोनिक्स' एक ऐसा पुराण-कल्पित निर्जीवी पक्षी है, जो मृत्यु के समय जल जाता है और उसके रक्त से पुन वैसे ही एक नये पक्षी की सृष्टि हो जाती है। एक भारतीय पाठक के लिए 'फोनिक्स' का अनुवाद 'जटायु' या 'गरुड' आदि कर दिया जाये, तो कुछ स्पष्ट नही होता, अत उसे भी न केवल यथावत् लिया गया है, बल्कि कुछ विशेषण बढाकर मूल कथा की ओर भी सकेत कर दिया गया है—

एड बर्न दि लौंग-लिव्ड फोनिक्स इन हर ब्लड, (19-4)

कर दे दग्ध चिरायु विहग फोनिक्स सजीव अछोर। (अनुवाद)

इसी प्रकार 'डायनज मेड' का अनुवाद 'डायना-कुमारी' रखा गया है। 'क्यूपिड' का अनुवाद 'काम' अवश्य किया गया है, पर उसे 'काम कलभ' कहा गया है। भारत मे बालो या धम्मिलो की तुलना शिखी-पिच्छ और नाग से और उनके वर्ण की तुलना घटाओ से की जाती है, पर पश्चिमी कवि उनकी तुलना तारो और मार्जोरम-कलियो से करते हैं—इन्हे भी यथावत् रख लिया गया है। हिम-कालीन पतझर भारत मे नही होता, अत पतझर को हिम-पतझर कह दिया गया है और एक स्थल पर 'अति-हिम-आवृत' कहकर उसकी तीव्रता की ओर

—राजेन्द्र द्विवेदी